ISSN : 23202467

युगान्तर

अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

आरती पब्लिशिंग हाउस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

आरती पब्लिशिंग हाऊस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

युगांतर अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

हेड आफिस : 2085/1, तृतीय तल, बजरंग बाजार, बी.पी., दिल्ली–110006
ए–5, क्रिश्चियन कालोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007
मो. 9455251733, 9918156392 Email: akhilesh_twiari1979@yahoo.com
santoshtiwari05712@gmail.com Webstie : www.yuganter.in

वर्ष 2021 – अंक–42
सितम्बर–2021

युगांतर शोध पत्रिका
(A Peer-Reviewed Research Journal)
यूजीसी के अनुमोदित पत्रिका सं. 64649

ISSN : 2320-2467

सम्पादक : संतोष कुमार तिवारी

प्रधान सम्पादक : हरि प्रकाश शुक्ल

सह–सम्पादक : प्रो. आनंद प्रकाश त्रिपाठी, डॉ. हरी सिंह गौर – केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सम्पादक मण्डल : प्रो. मिथिला प्रसाद त्रिपाठी (पूर्व कुलपति)– संस्कृति विश्व विद्यालय, उज्जैन

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी (पूर्व कुलपति) – संस्कृति विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. हुकुम चन्द, विभागाध्यक्ष, संगीत, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक, हरियाणा
डॉ. कमलेश कुमारी
प्रो. बी.एन. भालेराव – दिल्ली
डॉ. रूचिरा डिंगरा – दिल्ली
डॉ. ललिता त्रिपाठी – भोपाल
डॉ. कविता भाटिया – दिल्ली
डॉ. सीता लक्ष्मी – विषाक्षापट्टनम
डॉ. आचार्य एस. शेपारत्नम – आंध्रविश्वविद्यालय
डॉ. प्रतिभा पांडे – मतोहनलाल सुखाड़ियाविश्वविद्यालय, उदयपुर
प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल – पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़
प्रो. शुभ जोहरी – आर.टी.एम. विश्वविद्यालय, नागपुर
प्रो. जे.पी. मिश्रा – रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर
डॉ. शिवदयाल सिंह – महर्षि विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. मो. शाकिर शेख – विभागाध्यक्ष पूना कॉलेज
डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा – विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डा. माधवीलता दूबे – शा. डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल
डॉ. रेखा अरोड़ा –' दिल्ली

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति : डॉ. विजय कुमार मेहता – अध्यक्ष, अखिल विश्व हिन्दी समिति, न्यूयार्क अमेरिका
प्रो. सत्येन्द्र श्रीवास्तव – केम्ब्रिज विश्वविद्यालय केम्ब्रिज (यू.के.)
डॉ. शेर बहादुर सिंह – विश्व हिन्दी सेवी, न्यूयार्क, अमेरिका
डॉ. पद्मेश गुप्त – अध्यक्ष, यू.के. हिन्दी समिति लंदन
डॉ. सुषमा बेदी – कोलंबिया यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क

आरती पब्लिशिंग हाऊस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

युगांतर अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

हेड आफिस : 2085/1, तृतीय तल, बजरंग बाजार, बी.पी., दिल्ली–110006
ए–5, क्रिश्चियन कालोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007
मो. 9455251733, 9918156392 Email: akhilesh_twiari1979@yahoo.com
santoshtiwari05712@gmail.com Webstie : www.yuganter.in

वर्ष 2021 – अंक–42
सितम्बर–2021

युगांतर शोध पत्रिका
(A Peer-Reviewed Research Journal)
यूजीसी के अनुमोदित पत्रिका सं. 64649

ISSN : 2320-2467

प्रो. हेमराज सुन्दर – महात्मा गांधी संस्थान, मोका मारीशस
स्नेह ठाकुर – संपादक वसुधा, टोरन्टो कनाडा
उषा राजे सक्सैना – उपाध्यक्ष, यू.के. हिन्दी समिति, लंदन
डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल – अध्यक्ष इण्डो नाईजिरियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
डॉ. ऊषा देवी शुक्ला – डर्बन विश्वविद्यालय, डर्बन (दक्षिण अफ्रीका)
अपर्णा छिरसागर – डॉफिन विश्वविद्यालय, पेरिस, फ्रांस
डॉ. घनश्याम शर्मा – वेनिसविश्वविद्यालय, इटली
राम प्रसाद भट्ट – हेम्बर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी
डॉ. पूर्णिमा बर्मन – यू.ए.ई.
प्रो. तजेन्द्र शर्मा – अमेरिका (यू.के.)

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व लेखकों का है। आलेखों में वयक्त विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति है। युगांतर अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका अथवा सम्पादक मण्डल काउनसे सहमति होना आवश्यक नहीं है। युगांतर शोध लेख, मूल लेख प्रकाशन एवं मंगवाने हेतु निम्न पते पर सम्पर्क करें। (कृपया लेख ई–मेल के माध्यम से ही स्वीकार किया जायेगा।

Editor in Chief
युगांतर अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
खंड–**10** अंक–**42** वर्ष–**2021** (सितम्बर 2021) आईएसएसएनः **2320–2467** आईएपफः **5.4**

अनुक्रमणिका

		पृ.सं.
1.	शिक्षा के क्षेत्र में महिलाएँ – डॉ. पूनम साहू	1 – 4
2.	समाज में महिलाओं की भूमिका – डॉ. निधि मिश्रा	5 – 7
3.	भारत की विदेश नीति – अफगानिस्तान के विशेष संदर्भ में – डॉ मधुकांता समाधिया	8 – 13
4.	''वागड़ में भीलों के लोकगीतों की ऐतिहासिक झलक'' डॉ. प्रेमचन्द डाबी	14 –18
5.	राजस्थान की प्रमुख घुमन्तु जनजातियां – डॉ. लोकेश पारगी	19 –21
6.	देशज भील संस्कृति पर वैश्वीकरण का प्रभाव – डॉ. लोकेश पारगी	22 –23
7.	पर्यावरण से अतः सम्बंध – प्रो. मधु सिंगला	24 –27
7.	भारत में दलितों की उत्पत्ति और उनके उत्थान के प्रयास – डॉ. ईशा शर्मा, संजीव कुमार सिंह	28 –37
8.	गांधीवाद और मानवतावाद – डॉ. लोकेश जसोरिया, डॉ. सीमा मीणा	38 –42

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
खंड–**10** अंक–**42** वर्ष–**2021** (सितम्बर 2021) आईएसएसएनः **2320–2467** आईएपफः **5.4**

शिक्षा के क्षेत्र में महिलाएँ

डॉ. पूनम साहू

सारांश

"अंधकार को कोसने से अच्छा है एक दीपक जला दिया जाए और शिक्षा ही एक ऐसा दीपक है जो अज्ञानता रूपी अंधकार को हमेशा के लिए खत्म कर सकता है।"

शिक्षा मानव के विकास की कुंजी ही नहीं, बल्कि समाज का संबल और उसकी संजीवनी भी है। संसार में मानव मात्र ही एक ऐसा प्राणी है, जो एक विकसित मस्तिष्क का स्वामी है एवं उसमें चिंतन मनन की योग्यता विद्यमान है। मनुष्य की योग्यता का विकास का कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही संभव है। शिक्षा ही वह मेरूदंड है जिससे समाज को एक निश्चित रूप मिलता है। महिलाओं के सर्वांगीण विकास के एिल आवश्यक गुणों दक्षताओं एंव योग्यताओं का सूत्रपात शिक्षा है।

बस्तर के आदिवासी परिवारों में महिलाओं का स्थान काफी ऊँचा है। परिवार की जिम्मेदारी संभालने में बस्तर की महिलाओं ने पूरे प्रदेश में परचम लहराया है। प्रदेश में महिला मुखिया यपरिवारों में सर्वाधिक बस्तर संभाग में है। उत्तर बस्तर को कांकेर जिले में 14 प्रतिशत परिवार की जिम्मेदारी महिलाएं उठा रही हैं। परिवार के केंद्र बिंदु नारी होती है। समाज को सुसंस्कृत बनाने का श्रेय नारी को ही जाता है। शिक्षा के उद्‌भव के कारण बस्तर की महिलाओं ने यहां की राजनीति, प्रशासन, धर्म, क्रांति, श्रम, स्थापत्य कला, शिल्प कला आदि क्षेत्रों में पुरुषों के कंधे से कंधे मिलाकर साथ दिया। आधुनिक संदर्भ में महिलाएं बस्तर की अर्थव्यवस्था की धुरी हैं।

शिक्षा व्यक्ति राष्ट्र की प्रगति के साथ–साथ सभ्यता एवं संस्कृति तथ व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करता है, भारतीय साहित्य ओर इतिहास इसका प्रमाण है कि चाहे धर्म का क्षेत्र हो या विद्या का महिलाओं ने अग्रणी भूमिका निभाई है। किसी भी देश राष्ट्र समाज और परिवार की सभ्यता और संस्कृतिक स्थिति का पता उसके नारी संबंधी विचार और भावना से लगाया जाता है। अगर हम पुरुष को राष्ट्र का स्तम्भ मानते हैं तो नारी उस स्तम्भ की धुरी है, नारी समाज का आधार और मेरूदण्ड है जिसने देश व काल में उत्तरोत्तर उन्नतिशील होता रहा है।[1]

मानव जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है आदिकाल से अब तक किसी न किसी रूप में अपने अस्तित्व को स्थापित किये हुए है। सभी परिवर्तनों एंव विकास के मूल में शिक्षा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, शिक्षा का प्रभाव केवल जगत पर आच्छादित नहीं है अपितु सम्पूर्ण प्राणी समाज इससे प्रभावित है।[2] जिस प्रकार शिशु अपने अंग्रेजों का अनुकरण कर चलना, दौड़ना, खाना आदि विभिन्न क्रियाएं सीखता है। शिक्षा का अर्थ कोरा ज्ञानाज्रन न होकर बालक की क्रियाशीलता और अनुभव है।[3]

डॉ. राधाकृष्णन – शिक्षा को पूर्ण होने के लिए मानवीय होना चाहिए। इसे न केवल बुद्धि का प्रतिशक्षण करना चाहिए। वरन् हृदय का परिष्करण तथा आत्मा का अनुशासन भी। कोई भी शिक्षा पूर्ण नहीं समझी जा सकती यदि वह हृदय तथा आत्मा की अपक्षा करती है।[4]

समाज के संदर्भ में नारी की स्थिति युगानुयुग परिवर्तनशील बनी रहती है नारी की महत्ता ओर गौरव उसका वर्चस्व और गरिमा कभी उच्च से उच्चतर होती रही है। तो कभी ह्रास परिलक्षित होता रहा है, एक सा रंगरूप उसका कभी नहीं रहा। आज नारी की जो सामाजिक एवं वैयक्तिक स्थिति है, कल वैसी न थी यह अन्य बात है कि नारी अपनी विद्यमान अवस्था को अतीत की अपेक्षा उन्नत मानती है।[5] किसी भी युग में सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण तथा विकास में बेटी, पत्नी और माता तीनों रूपों में नारी का महत्वपूर्ण योगदान होता है इसलिए किसी भी युग की सामाजिक स्थिति का आकलन उस युग की नारी के शैक्षणिक स्थिति के ज्ञान के बिना नहीं किया जा सकता।

वैदिक कालीन समाज में नारी को उच्च स्थान प्राप्त था और उन्हें शिक्षा प्राप्त करने तथा यज्ञ करने का उतना था जितना कि पुरुषों को। ऋग्वेद में 14 और अथर्ववेद मं 5 वैदिक विदूषियों का उल्लेख है। ऋग्वेद में इनके 422 मंत्र हैं इनके नाम इस प्रकार हैंः– सूर्यासावित्री (47 मंत्र), घोषा कक्षीवती (28 मंत्र), सिकता निदावरी (20 मंत्र), ईद्राणी (17 मंत्र), यानी वैवस्वती (11 मंत्र), अदिति (10 मंत्र), बाकू आम्मणी (8 मंत्र), अपाला आत्रेयि (6 मंत्र), उर्ववी (6 मंत्र), श्रद्धा कामायनी (5 मंत्र), नदी (4 मंत्र), सर्पराज्ञी (3 मंत्र), गोधा (22 मंत्र), शरवती अंगिरसि (23 मंत्र), वसुकपत्नी (24 मंत्र), रमेशा ब्रह्मवादिनी (5 मंत्र)।[6]

आज की सभ्यता सुसंस्कृत नारियों की आधारशिला नहीं मानी जाती है। प्राचीन भारत में महिलाओं की शिक्षा की बहुत हद तक उत्तम व्यवस्था थी। किन्तु यह व्यवस्था बाद के शासकों ने समाप्त कर दी थी। मुस्लिम शासनकाल की एक बड़ी देन पर्दाप्रथा है। इस प्रथा ने हिन्दू नारी जगत को कुंठित कर दिया।[7] अशिक्षा के कारण स्वावलम्बी न होकरपराश्रित करती थी और असमय, कालकलवित हो जाती थी। अब नारी की रानी से सेविका की शक्ति स्त्रोत के स्थान पर दुर्बलता की खान समझी जाने लगी। उन्हें स्वतंत्र नहीं रहने दिया गया और समाज में यह धारणा विकसित हुई कि महिला को बाल्यपन में पिता का संरक्षण, युवावस्था में पति का संरक्षण तथा वृद्धावस्था में पुत्र का संरक्षण में बिताना चाहिए। बाल विवाह का प्रचलन बढ़ा, शिक्षा पररोक लगा दी गई। मध्यकालीन युग में इसकी स्थिति में ओर भी अधिक गिरावट आई।[8]

शाही घरानों की अनेक विदुषी नारियों के नाम आज भी इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं। यथा– रजिया सुल्ताना, चांद सुल्ताना, गुलबदन बेगम, जेब्बूनिशा बेगम आदि। हिन्दू विदुषियों में नारी रूपमति, रानी दुर्गावती, इन्दौर की शासिका अहिल्याबाई और शिवाजी की माता जी जीजाबाई के नाम स्त्री शिक्षा के जगत में आज भी स्मरणीय है। जेब्बूनिशा ने साहित्य संस्था पुस्तकालय की स्थापना की थी। दुर्गाबाई, जीजाबाई तथा अंग्रेजों के समय में लक्ष्मीबाई आदि के उदाहरण इस बात को सिद्ध करते हैं कि राजपूतों में न केवल शस्त्रिय ज्ञान वरन् युद्ध विद्या का ज्ञान भी स्त्रियों को कराने की कोई मनाही न थी।[9]

आधुनिक काल में स्त्री – शिक्षा का प्रोत्साहन किया गया अब महिलाओं के उत्थान और प्रगति के लिए कार्य आरंभ किया गया। लड़कियों के लिए अलग से विद्यालय खोले गए, कुछ महिलाओं ने शिक्षण कार्य के लिए प्रशिक्षण प्राप्त किये। अठारवीं शताब्दी के अंतिम तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ऐसी तीन विदुषी नारियों का उल्लेख मिता है जो ज्ञान का भंडार थी और नारी जगत के लिए आदर्श थी। इन महिलाओं का नाम है– हती विद्यालंकार, श्याममोहिनी, देवी, और द्रवमयी। विद्यालंकार सभी के सभी संस्कृत भाषा में इतने निपुण थीं कि हिन्दू शास्त्र के कठिन विषयों पर विद्वान शास्त्रकारों से वाद–विवाद करती थीं। विद्यालंकार ने तो अनेक छात्रों को शिक्षा देने का काम करना आरंभ किया। सचमुच ये विद्याभूषण थे।[10]

बस्तर में महिला शिक्षा एवं महिलाओं की सहभागिता –

प्राकृतिक संसाधनों में सम्पन्न, प्रगतिशील एवं आदिवासी बहुमंजिला बस्तर प्रदेश के दूरस्थ परंतु सुरम्य स्थल पर बसा है बस्तर की विषय भौगोलिक परिस्थितियों ने विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया है, जो अन्य स्थानों से भिन्नता प्रदान कर विकास की नयी चुनौतियां प्रस्तुत करती है। सन्दर हरे भरे वनों में परिपूर्ण यह जिला विकास के मापदण्डों पर दढ़ता से अग्रसर होने के लिए परिपूर्ण संकलित है।[11] बस्तर के आदिवासी परिवारों में महिलाओं का काफी स्थान ऊँचा है। वनोपज संग्रह कर वे परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने से अपना सहयोग तो देती हैं, घर पर रहकर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारी का निर्वहन भी करती हैं। बस्तर की महिलाएं जिम्मेदारी में अग्रणी हैं। महिला प्रधान परिवारों में छत्तीसगढ़ में शीर्षस्थ तीसरे स्थान पर बस्तर संभाग है।[12] शिक्षा में प्रचार प्रसार का अभाव बहुत बड़ी समस्या रहती है, जिसके कारण निरक्षरता, अंधिविश्वास, रूढ़िवादिता का प्रकार जिले में है। जिससे जिले में स्वास्थ्य की भी समस्या रहती है। बस्तर का सामाजिक परिवेश ऐसा नहीं है कि यहां महिलाएं स्वतंत्र रूप से शिक्षा ग्रहण कर सके। शिक्षा ग्रहण करने के लिए एक तो इन्हें सामाजिक वातावरण रोकता है, दूसरा शिक्षण संस्थाओं का अभाव, फिर भी सम्पन्न परिवार की स्त्रियों ने बाहर जाकर शिक्षा ग्रहण किया तथावापस अपने घर में आकर ज्ञान के प्रवृत्ति उनका लालित्य,उनकी प्राकृतिक

सुन्दरता, दैहिक सम्पन्नता, कर्मठता और व्यवहार कुशलता अत्यन्त दुर्लभ है। यहां की नारी विभिन्न क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाई है।[13]

1. मासक देवी –

दंतेवाड़ा के एक शिलालेख का उल्लेख मिलता है, जिसके अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रकोट में स्थापित दिन्दक नाम–कुल के कए किसी प्रतापी नरेश की एक विदुषी बहन थी, जिसका नाम था– मासक देवी। वह उस राजा की बड़ी बहन थी। वे और तत्कालीन वातावरण में नारी–चेतना उत्पन्न की थी। मासक देवी ने कृषि–उत्थान तथा सेवा–भावना पर भी बल दिया था।[14]

2. रानी मेघावती –

चक्रकोट के काकतीय – नरेश हमीर देव की मृत्यु के पश्चात् 1379 ई. में उसका पुत्र भैराजदेव चक्रकोट का राजा बना। भैराजदेव की दो रानियाँ थीं। बड़ी रानी का नाम मेघावती था। मेघावती, कुआकोंडा के जमींदार की पुत्री थी। वह शरीर से जितनी तगड़ी थी, मन से भी उतनी ही। वह बड़ी तेज–तर्रार थी। आखेट.....

3. श्रीमती बी. माधवम्मा नायडु –

बस्तर की महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी को अक्षर ज्ञान, बारहखड़ी का पारायण करने वाली बस्तर रियासत की प्रथम महिला शिक्षिका, श्रीमती बी. माधवम्मा नायडू थी। उस जमाने में एक दक्षिण भारतीय महिला का अंगेजी में तो ठीक परन्तु हिन्दी एवं उर्दू में निष्णात होना अवस्मयकारी अद्भुत लगता है। उनका नाम न किसी अभिलेख में है न शाला में परन्तु उन्हें बस्तर की प्रथम महिला शिक्षिका होने का गौरव प्राप्त है। बस्तर के पुराने संभ्रान्त घरानों में उनका नाम आज भी विद्यमान है। प्यार एवं सम्मान से सभी उन्हें मास्टरिन अम्मा कहते थे। उन्हीं के परिवार की श्री भूवनेश्वर रथ की माता, उनकी जीवन्त शिष्यायें मौजूद हैं।[16]

4. राजमाता शिव नंदिनी देवी –

ब्रिटिश कालीन छत्तीसगढ़ की रियासतों में कांकेर एक महत्वपूर्ण रियासत है। कांकेर के राजा सदैव ब्रिटिश शासन के भक्त बने रहे। राजा कोमलदेव ने कन्या पक्ष के लोगों को कांकेर बुलवाकर शिव नंदिनी देवी के साथ विवाह किया था। रानी, विद्यानुरागी, धर्मपराय महिला थी। वह ब्राह्मणों व गरीबों को मुक्त हस्त से दान दिया करती थीं। रानी ने कांकेर स्थित बालाजी ंदिर को बहुत जमीन दान दी थी। आज जिस जमीन पर गांव बसा गया है और यह गांव बालाजी देवरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। कांकेर में कालेज खुलने पर रानी ने 30 एकड़ जमीन कॉलेज को दान में दी थी। रानी ने अपने समय निर्धन कन्याओं को धन देकर उनके विवाह की व्यवस्था की थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक निर्धन विद्यार्थियों को रानी आर्थिक मदद किया करती थीं। रानी ब्राह्मणों ओर निर्धन व्यक्तियों को दाह संस्कार सम्पन्न करने व अस्थियों को गंगानदी में विसर्जन करने के लिए धन दिया करती थीं। शिवनंदिनी देवी कांकेर में ही नहीं वरन् संपूर्ण छत्तीसगढ़ में प्रसिद्ध थीं। आज भी कांकेर बुजुर्ग धनी बाबा की कहानी सुनाते वक्त थकते नहीं हैं। 104 वर्ष की आयु में रानी का स्वर्गवास हुआ था।[17]

5. महारानी प्रफुल्ल कुमारी देवी –

काकतीय वंश के 19वें शासक रूद्रप्रताप देव की एकमात्र संतान प्रफुल्ल कुमारी देवी थी। नवम्बर 1922 को प्रफुल्ल कुमारी देवी का राज्याभिषेक हुआ। 25 जनवरी 1927 ई. को प्रफुल्ल कुमारी देवी का विवाह मयुरभंज के महाराजा दामचंद भंजदेव के पुत्र प्रफुल्ल चंद भंदेव के साथ हआ। रानी प्रफुल्ल कुमारी देवी बस्तर की प्रजा के चौमुखी विकास के लिए प्रयत्नशील थीं। प्रजा रानी को देवतुल्य मानती थी। प्रजा का रानी में रोक–टोक मिलना होता था। रानी प्रफुल्ल कुमारी देवी दिखने में सुंदर और प्रभावशाली थी। रानी संपूर्ण बस्तर में 'बीबी धनी' के नाम से विख्यात थीं।[18]

6. सेवाव्रती कु. नाज खान –

कुमारी नाज खान का संपूर्ण जीवन समाज की सेवा में बीत रहा है। विशेषकर गरीब, दुखी असहाय एवं पिछड़े वर्ग की सेवा में। अपने आयु के 70 वर्ष के नजदीक आने के बाद विराम लेना नहीं चाहती। कु. नाज खान नारी शिक्षा के प्रसार तथा महिलाओं की उन्नति के लिए कई प्रकार के सांस्कृतिक तथा मनोरंजक कार्यक्रम कराया करती थीं। कु. नाज खान बाल शिक्षा से लेकर प्रौढ़ शिक्षा तक संचालित कररही हैं, सब कुछ निःशुल्क। उनके सफलता को देखकर लोगों के कहना पड़ता है – "चली वह अकेली जमाना बदलने, कदम व कदम साथ होता चला गया।[19]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. केयर भूषण, छत्तीसगढ़ के नारी रत्नजनचेतना प्रकाशन, सन् 2002, पृ. 01
2. डॉ. रामनाथ वर्मा, शैक्षिक समाजशास्त्र, सन् 1996, पृ. 02
3. सरयू प्रसाद चौबे, भारतीय शिक्षाउनकी समस्याएं और नवाचार, सन् 1995 पृ. 50
4. रागिनी श्रीवास्तव, आधुनिक समाज महिलाएं, सन् 2011,पृ. 13
5. जयश्री एस भटट, समाज कल्याण नारी शिक्षा संस्कृति,सन 2003 पृ. 01
6. Mukherjee, Problams of administration of education in India, 2007, p. 259
7. धनपति पाण्डेय, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, सन् 1992, पृ. 60
8. श्रीमती मंजूसा, शोध उपक्रम, सन् 2003, पृ. 16
9. महेशचन्द्र सिंघल, भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं, सन् 1971, पृ. 261
10. धनपति पाण्डेय, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, सन् 1992 पृ. 239
11. शंकर तिवारी, बस्तर एक परिचय, सन् 2007 पृ. 44
12. दैनिक भास्कर, दिनांक 16.03.2013
13. शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण के आधार पर
14. लाला जगदलपुरी, बस्तर बंधु, सन् 2011, पृ. 165
15. उपरोक्त पृ. 186
16. सुशील वर्मा, चित्रोत्पला बस्तर बंधु, सन् 2007, पृ.17
17. जे.आर. बार्ल्यान, बस्तर की वीरांगनाएं 2001, पृ. 24
18. राम कुमार बेहार, आदिवासी बस्तर इतिहास एवं परंपराएं सन् 1992, पृ. 55
19. केयर भूषण छत्तीसगढ़ का नारी रत्न, सन् 2002, पृ. 77

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
खंड–**10** अंक–**42** वर्ष–**2021** (सितम्बर 2021) आईएसएसएनः **2320–2467** आईएपफः **5.4**

''समाज में महिलाओं की भूमिका''

डा0 निधि मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, मनोविज्ञान
का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अयोध्या।

वैदिक काल में महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त थे–सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और धार्मिक। तमाम वैदिक ऋचाओं की रचना में भी अपाला, गार्गी, मैत्रैयी आदि का नाम लिया जाता है। सत्यकाम–जावाल के कथानक से स्पष्ट है कि वैदिक समाज में अविवाहित माँ को स्वीकृति प्राप्त थी। वौद्ध काल में महिलायें धर्म प्रचारक के रूप में विदेश गई थीं इसका उल्लेख इतिहास में है। कालान्तर में महिलाओं को घर की चहारदीवारी में बन्द कर दिया गया। चूल्हा चौका और बच्चे पैदा करना यही सीमा तय कर दी गई। सदियों बीत गई। समय के अंधकार में महिला खो गई। विधवा होना या सती होना यही प्रारब्ध था।

19वीं शताब्दी में राजा राममोहन राय (1774–1833), ईश्वरचन्द्र विधासागर (1820–1871), दयानन्द सरस्वती (1827–1883), केशवचन्द्र सेन (1838–1884) के प्रयासों से और उसके बाद महात्मा गांधी और आजादी के आन्दोलनों के माध्यम से 20वीं शताब्दी में महिलाओं के सामाजिक और शैक्षिक उन्नयन के लिये सार्थक प्रयास हुये। आजादी के बाद पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अपने समकालीन साथियों के विरोध के बावजूद हिन्दू कोड बिल को टुकड़ों–टुकड़ों में पास करवा कर महिला अस्मिता के विकास को एक नया आयाम दिया। नेहरू का यह प्रयास महिला विकास के सन्दर्भ में मील का पत्थर साबित हुआ। सामाजिक परिवर्तन के घूमते चक्र के कारण महिलाओं को परंपरागत रूढ़िवादी भूमिका से काफी हद तक मुक्ति मिल गई है। अब महिलाएं मात्र गृहणी की ही भूमिका तक सिमटी नहीं है बल्कि पूर्ण स्त्री के रूप में सहज देखी जा सकती है।

सामाजिक परिवर्तनों का असर शहरी शिक्षित महिलाओं में और उसमें भी विशेष रूप से मध्यम वर्ग की महिलाओं पर अधिक पड़ा है। महिलाओं को अपने व्यक्तित्व को निखारने तथा अधिकार जताने के नए अधिकार प्राप्त हुए है। भारतीय ग्रामीण महिलाएं न सिर्फ घरेलू कामकाज की जिम्मेदारी रखती है बल्कि पुरूषों के साथ खेतों में भी काम करती है। इस प्रकार महिलाएं घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर आय सृजित करने में लगी है। इससे उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की भी पूर्ति होती है। कामकाजी महिलाओं को घर और नौकरी दोनों की भूमिका को निभाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मार्क्स ने कहा था कि ''स्त्रियों की सामाजिक प्रगति को ठीक ठाक से मापा जा सकता है।''

आज का परिदृश्य उत्साहवर्धक है। सम्पत्ति का अधिकार, तलाक, विधवा, विवाह मान्य हो चुके हैं। बाल विवाह बन्द हैं, किन्तु खेद है कि आज भी राजस्थान में अक्षय तृतीया के दिन बाल–विवाह धूम धाम से होते हैं, समाज के दिग्गज उसमें शरीक होते हैं। कानून आँख बन्द कर लेता है। अपनी हैसियत और हस्ती बताने के लिये औरत को अभी बहुत सारे बन्धनों से आजादी पानी है। कुमारी–श्रीमती जैसे शब्दों से, बिन्दी, सिन्दूर, करवाचौथ, अहोई आढ़े, जेबर, साज–श्रृंगार जैसी पुरूषवादी और सामन्ती बेड़ियों से आजादी और इनको बढ़ावा देने वाली गृहशोभा, बनिता जैसी पत्रिकाओं से जिनके पहले कबर पृष्ठ से अन्तिम कबर पृष्ठ तक के सौन्दर्य बोधक विज्ञापनों से भी आजादी।

यदि महिलायें कुछ हुनर जानती हैं तो वह पूरी जान से मेहनत करके परिवार का भरण पोषण करने में अपना खून–पसीना एक कर देती हैं। पुरूष को मानसिक सम्बल प्रदान करती हैं। पुरूष जब तमाम झंझाबातों से टूट जाता है तो महिलायें चट्टान की तरह हालात का सामना करती नजर आती है। परिवार का आधार महिला ही है–

औरत न हो तो घर में अंधेरा रहे सदा,
चूल्हा न जले भूख का डेरा रहे सदा।

बच्चे अनाथ डोलें तो बूढ़े रहें पड़े,
डगर–मवेशियों के भी बाड़े रहे सड़े।।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. आभा अवस्थी ने कहा, ''स्त्री पुरूष एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी नही वरन् पूरक है। उनकी भूमिकाएँ उनकी अपेक्षाएँ और प्रकृति परस्पर सहिष्णुता, समरसता, सद्भाव और सहदयता का संदेश दे सकते हैं, समाज के लिये दोनों की समान अनिवार्यता है।''

भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार बिन्दु कृषि है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रम का महत्वपूर्ण स्थान है।

औरत न हो तो कौन नलाई करे भला,
खुर्पी लगाये कौन, गुड़ाई करे भला?
फिर धान रोपने का नहीं आदमी में दम,
औरत न हो तो उनके निकल जाये सारे खम।

कोई भी इमारत बने, सड़क, पुल, कारखाने, मशीन कहाँ नही है औरत के श्रम की भागीदारी।

सामाजिक बेड़ियों के खिलाफ आवाज बुलन्द की 19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय महिला आन्दोलन की नायिका रमाबाई ने। तेरह साल की उम्र में की गई शादी को नकारते हुये कहा ''कच्ची उम्र के रिश्ते'' को पक्का मानने को वह तैयार नहीं है। तमाम विरोध और विपरीत परिस्थितियों के बावजूद रमाबाई ने अपना अस्तित्व बनाये रखते हुये सामाजिक संचेतना में महिला के अस्तित्व को स्वीकार कराया।

वैश्विक स्तर पर महिला योगदान की चर्चा करें तो सन् 1909 में अमेरिका में कपड़ा व अन्य फैक्ट्रियों में काम करने वाली महिलाओं ने पहली बार 'महिला दिवस' बनाया। उनकी मांग थी– (1) श्रम कानूनों में परिवर्तन (2) 8 घंटे का कार्य दिवस एवं (3) वोट देने का अधिकार। सन् 1910 में क्लारा जेटकिन एवं रोजा लग्जमवर्ग से सामूहिक रूप से ''अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस'' मनाये जाने का प्रस्ताव रखा। महिलाओं की मुक्ति के संकल्प और हर तरह से शोषण मुक्त दुनिया बनाने के लिये 1913 से अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च को मनाया जाता है। 1917 में महिला आन्दोलन में 'शान्ति–जमीन और रोटी' को भी शामिल किया गया। शान्ति, जमीन और रोटी का सामाजिक महत्व महिला अस्मिता से जुड़ा है, तभी तो परिवार की केन्द्रीय भूमिका में स्त्री है। 'बिन घरनी घर भूत का डेरा', जैसे कथनों के साथ ही, 'जिस घर में बिटिया नहीं, उस घर की देहरी सूनी रह जाती है।' उस घर में रौनक नहीं होती, समाज की इकाई परिवार में महिला के महत्व और उसकी भूमिका को उजागर करती है।

मुंशी प्रेमचन्द्र ने लिखा है ''स्त्री पुरूष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिये क्षमा, त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श है, नारी इन आदर्शों को प्राप्त कर चुकी है।

शिक्षा की रोशनी में समाज की बेड़ियों से आज की लड़की जूझ रही हैं। आनर किलिंग की परवाह किये बगैर खाप पंचायतों को चुनौती देती सामाजिक परिवर्तन की राह प्रशस्त कर रही है। खेत–खलिहान, कारखाने से लेकर देश और दुनिया के हर क्षेत्र में मुस्तैदी के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज करा समाज को एक नई दिशा देने को प्रयासरत है, आज की महिला। निर्भया आन्दोलन के वक्त दिल्ली की छात्राओं ने चीखकर कहा था–'हमारी स्कर्ट से ऊँची हमारी आवाज है, हमें चाहिये बेखौफ आजादी'। इसके परिणाम स्वरूप बने नवीन यौन उत्पीड़न कानून की बजह से देश के तमाम नेता, अभिनेता, विधायक, सांसद, प्रोफेसर, डाक्टर, पत्रकार, सन्त–महात्मा और तमाम संप्रभुओं को जेल जाना पड़ा।

विकलांग हैं हम, तो क्या कर लेगा ऐवरेस्ट, मुझे तो एवरेस्ट फतह करना है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन में टॉप भी करना है, विकलांगता के बावजूद हमें अपना हक प्राप्त करना आता है। खेल के मैदान में, संगीत के क्षेत्र में, सिनेमा–थियेटर, साहित्य जगत में, छोटे, व्यापार से लेकर कारपोरेट सेक्टर तक, देश–दुनिया की राजनीति के हर क्षेत्र में और शासन प्रशासन में प्रभावी हस्तक्षेप के साथ आन्तरिक सुरक्षा से लेकर देश की सुरक्षा के प्रत्येक सेक्टर में परिवर्तन की बयार लेकर आ चुकी है महिला। इरोम शर्मिला,

तसलीमा नसरीन, अरून्धनि राय, मेधा पाटकर, महाश्वेता देवी, मैत्रेयी पुष्पा, अरुणिमा, मलाला यूसुफ जई, मेरीकाम, इरा सिंघल यह फेहसिस्त बहुत लम्बी हैं, इन सभी के अप्रतिम संघर्ष से सामाजिक परिदृश्य और विमर्श कुछ बदला जरूर है, लेकिन समाज के पुरुषवादी हिस्से की सोच अभी नहीं बदली है। पर रास्ता निकलेगा, क्योंकि सामाजिक परिवर्तन में महिलाओं ने अभी तक जितनी भूमिका उजागर की है वह तो झरोखा भर है। डगर बहुत आगे तक जायेगी। सफदर हाशमी ने बहुत पहले कह दिया था–

हर खासो– आम गौर से सुनना ये कहानो,
औरत की कहानी है ये औरत की जुबानी।।
देखो हम महिलाओं को जो आ गई हैं सामनें,
मिल जाओ हमारे संग, ये सैलाव है, रुक न पायेगा।

कुछ वर्षों से महिलाओं की जीवनशैली में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिले हैं, जिनसे उनके व्यवहार मूल्य संवेदनाओं तथा प्रेरणा शक्ति ही प्रभावित नहीं हुई बल्कि आज वे जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर भागदारी कर रही हैं। सामाजिक परिवर्तन के कारण महिलाओं को रूढ़िवादी भूमिका से काफी हद तक मुक्ति मिल गई है।

अंततः ''नारी'' विधाता की सर्वोत्तम और नायाब सृष्टि है। नारी प्रकृति एवं ईश्वर द्वारा प्रदत्त अद्भुत ''पवित्र साध्य'' है, जिसे महसूस करने के लिए पवित्र साधन का होना जरूरी है।

सन्दर्भ

1. कथकली बागची / मिनी फिलिप – स्त्रियां लुप्त क्यों हो रही है, स्त्री के लिये जगह, सम्पादक–राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, 1994, पृ0–105
2. कविता कृष्णन – महिला आन्दोलन, समकालीन जनमत, मार्च 2010, पृ0 4–6
3. पाण्डुरंग बामन काणे – धर्मशास्त्र का इतिहास, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ पृ0 313–314
4. B.Kuppuswany - The Change in the status of women, in Social Change in india, Vikash, 1979, P. 239-265
5. B.R.Nanda - "Indian women form to Modernity" Vikas Pub. New Delhi 1976.
6. डा० सतीष चन्द शर्मा – ''बेहतर दुनिया की तलाश''

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
खंड–**10** अंक–**42** वर्ष–**2021** (सितम्बर 2021) आईएसएसएनः **2320–2467** आईएपफः **5.4**

भारत की विदेश नीति : अफगानिस्तान के विशेष संदर्भ में

डा0 मधुकांता समाधिया
सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान
पं. जवाहरलाल नेहरू पी.जी. कालेज,
बाँदा, उ.प्र.।

वर्तमान युग में सभी राष्ट्रों की एक–दूसरे से भौगोलिक दूरी पर स्थित होते हुए भी संचार से आधुनिक साधनों द्वारा निकल आ गये हैं। विश्व के किसी भी भाग में घटने वाली घटना अन्य राष्ट्रों पर प्रभाव अवश्य डालती है। इसी कारण वैदेशिक संबंधों को संचालित करने के लिए एक श्रेष्ठ विदेश नीति की आवश्यकता होती है।

सभी राष्ट्र किसी न किसी कारण से एक–दूसरे पर आश्रित हैं एवं राज्यों की एक–दूसरे पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। राजनीतिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, सैनिक इत्यादि हितों की अभिवृत्ति के लिए सभी राष्ट्र निरंतर प्रयासरत हैं। प्रत्येक राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए विदेश नीति का निर्धारण करते हुए, इस बात को ध्यान में रखते हैं कि विदेशों के साथ किस प्रकार के संबंध रखे जाएं। इसके लिए उन्हें कुछ कार्य करने होते हैं और कुछ अन्य कार्यों से दूर रहना होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा एवं संप्रभुता की रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य है। विदेशी नीति निर्माण का प्रारंभिक बिन्दु राष्ट्रीय हित है। इसी के माध्यम से अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन हितों को निश्चित किया जाता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हित निश्चित करता है और फिर विदेश नीति द्वारा उनको प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के वातावरण में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्वहितकारी नीतियों का समूह है। किसी भी देश की विदेश नीति दूसरे देशों के साथ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक विषयों पर पालन की जाने वाली नीति है, जिसके माध्यम से प्रत्येक राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने संबंधों का निर्वहन करते हैं। इनके द्वारा अपनायी जाने वाली विदेश नीति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस राष्ट्र के क्या–क्या राष्ट्रीय हित हैं, वह किस प्रकार उन्हें सुरक्षित रखना एवं विकसित करना चाहता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को विदेश नीति ही शुद्ध आधार प्रदान करती है।

भारत एक विस्तृत भू–भाग एवं विशाल जनसंख्या वाला देश है। भारत के पास एक अति प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति की धरोहर है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत की जिस विदेश नीति कानिर्माण किया गया वह हमारेदेश की सभ्यता, संस्कृति एवं राजनीतिक परम्पराको प्रतिबिम्बित करती है। भारतीय विदेश नीति मूलरूप से गाँधी जी के दर्शन, हमारे स्वाधीनता आंदोलन के आदर्शों एवं भारतीय परम्परा के मौलिक सिद्धांत 'वसुधैव कुटुम्बकम' (समस्त विश्व एक परिवार के समान है) पर आधारित है। भारत की विशेष नीति का संचालन उसकी सभ्यता की परम्परा, भू–राजनीतिक स्थिति, मिश्रित संस्कृति, देश की सामूहिक नीतियों एवं कार्यक्रमों से हो रहा है। भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक परम्परायं एवं भूतकालीन अनुभव भारतीय विदेश नीति के निर्माण में प्रभावक तत्व है। वैश्वीकरण के युग में एक देश के राष्ट्रीय हित को उसकी भू–राजनीतिक स्थिति एवं अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण से अलग करना अत्यंत कठिन है। किसी भी अन्य राष्ट्र की तरह भारतीय विदेश नीति भी निरंतर अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होती रहती है। भारत की विदेश नीति का विश्व की राजनीति पर गहरा प्रभाव है। भारतीय विदेश नीति घरेलू कारकों के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय कारकों से भी निर्धारित होती है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक कारकों ने संस्कृतियों के एक जटिल सम्श्रिण का निर्माण किया, जिन्होंने विवाद एवं समझौते को जारी रखते हुए हमारे देश की विदेश नीति को प्रतिबिंबित किया। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासक, स्वतंत्रता आंदोलन, समाज के बहुलवादी रूप के साथ–साथ सहनशीलता, अहिंसा, साध्य एवं साधनों जैसे परम्परावादी मूल्य भारत की विदेश नीति को दूरदर्शिता प्रदान करते हैं।

दक्षिण एशिया के राष्ट्रों में भारत का स्थान सर्वोच्च है एवं इसे दक्षिण की प्रधान शक्ति माना जाता है। दक्षिण एशिया में भारत की यह स्थिति पड़ोसी देशों के साथ संबंध निर्माण में चुनौती पस्तुत करती है।

भारत द्वारा हमेशा अपने पड़ोसी देशों के साथ सदैव मधुर एवं मैत्रीपूर्ण संबंध बनाने का प्रयत्न किया गया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा इन पड़ोसी देशें के प्रति पृथक नीति का निर्माण नहीं किया गया। भारत के प्रमुख पड़ोसियों में जहाँ पाकिस्तान और चीन को सम्मिलित किया गया तो वहीं श्रीलंका, अफगानिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान को। इस विभाजन में केन्द्रीय या गौण व अन्य किसी भी प्रकार के विभाजन का अर्थ यह नहीं है कि कुछ पड़ोसी राष्ट्र भारतीय विदेश नीति के लिए अति महत्वपूर्ण हैं। इन सभी पड़ोसी राष्ट्रों का अपना अलग–अलग स्वरूप में महत्व है। वे विभिन्न संदर्भों में विदेश नीति को प्रभावित करते हैं और हमेशा भविष्य में भी करते रहेंगे। सभी पड़ोसी देशों के साथ सुदृढ़ एवं मित्रतापूर्ण संबंधों के आधार पर ही भारत की दक्षिण एशिया एवं विश्व में स्थिति का आंकलन किया जा सकता है।

भारत–अफगानिस्तान एक–दूसरे के पड़ोस में स्थित दो प्रमुख दक्षिण एशिया के देश एवं दोनों दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस) के भी सदस्य हैं। दोनों के बीच प्राचीनकाल से ही गहरे संबंध रहे। महाभारत काल में अफगानिस्तान के गंधान जो वर्तमान समय में कंधार है, की राजकमारी का विवाह हस्तिनापुर (वर्तमान दिल्ली) के राजा धृतराष्ट्र से हुआ था। भारत द्वारा हमेशा यहाँ आर्थिक, मानवीय एवं तकनीकी सहायता प्रदान की गई।

सत्रहवीं शताब्दी में अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में आए और उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में वे इस देश के शासक बन बैठे। भारत ने औपनिवेशिक शासक का शांतिपूर्ण संघर्ष किया और 15 अस्त 1947 को स्वतंत्र होकर एक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य बना। भारत के अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का सदस्य बनते ही विश्व में उपनिवेशवाद के उन्मूलन की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। भारत ने एशिया–अफ्रीका के देशों में उपनिवेशवाद–विरोधी तथा साम्राज्यवाद विरोधी सघर्ष का पूर्ण समर्थन किया। स्वतंत्र भारतीय विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई गई और अफगानिस्तान के शासक जहीर शाह द्वारा वर्ष 1933–73 में इसी नीति पर अमल किया गया। अफगानिस्तान के पुर्ननिर्माण एवं विकास में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका होने के साथ–साथ दोनों लोकतांत्रिक एवं स्थायी सरकार के समर्थक हैं। ऐतिहासिक रूप से अफगानिस्तान के साथ भारत के अच्छे आर्थिक एवं सांस्कृतिक संबंध रहे, किन्तु 1996 से 2001 में तालिबान शासक के दौरान संबंधों में गिरावट आई। नेपाल से आई.सी–814 (कंधार–संकट) विमान अपहरण और कुछ कुख्यात आतंकवादियों को छुड़वाने की तालिबान शासन की मांग इसका उदाहरण है। इस शासन की समाप्ति के बाद भारत ने अफगानिस्तान से अपने संबंधों को फिर से प्रगाढ़ करना शुरू किया। 1998 में भारत द्वारा अफगानिस्तान में आतंकवादियों को प्रशिक्षण देने एवं आतंकवाद की स्थायी स्थली बनाने का घोर विरोध किया अर्थात् तालिबान सरकार द्वारा अलकायदा एवं पाकिस्तान द्वारा प्रशिक्षण कार्यों में संलग्न होना भारत की सुरक्षा के लिए खतरा माना। भारत ने पाकिस्तान द्वारा अफगानिस्तान–तालिबान को सैन्य, कूटनीतिक एवं नैतिक समर्थन देने का विरोध किया। भारत–तालिबान सरकार के बीच संबंधों में गिरावट एवं कटता के पीछे पाकिस्तान का हाथ था जिसने 1996 में तालिबान को सत्तारुढ़ करवाने में हर प्रकार से मदद की। सितंबर 1996 से पूर्व भारत–अफगानिस्तान में वुराहुद्दीन रब्बानी सरकार का समर्थन रहा। तालिबान द्वारा काबुल से सत्ता हथियाने के बाद भारत उत्तरी गठबंधन को अपना कूटनीतिक एवं नैतिक समर्थन देता रहा। उत्तरी गठबंधन में अपदस्थ राष्ट्रपति रब्बानी, उज्जेक नेता रशीद दोस्तम, अहमदशाह मसूद–प्रमुख नेता थे। भारत सरकार ने तालिबान सरकार को मान्यता नहीं दी क्योंकि पाकिस्तान इस सरकार को भारत के खिलाफ एक हथियार के रूप में काम में लेता रहा। कश्मीर में उग्रवाद को रूप देने में अफगान विद्रोहियों का प्रमुख हाथ रहा जिसे पाकिस्तान द्वारा प्रेरित एवं उत्साहित किया गया। तालिबान की भारत विरोधी नीतियों से अफगानिस्तान एवं भारत के बीच 1996 से उसके पतन 2001 तक संबंधों मं इतनी गिरावट आ चुकी थी कि भारत ने काबुल में अपने दूतावास कार्यालय को अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया। 1996 से 2001 क चले आ रहे बर्बरतापूर्ण तालिबान शासन का 07 दिसंबर 2001 को अंत हो गया। तालिबान लड़ाकों ने अंतिमतः काबुल में अमरीकी सेना के समक्ष समर्पण किया। दिसंबर 2001 में हामिद करजई अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री बने। 07 दिसंबर 2001 में गृहमंत्री युनुस कानूनी नई दिल्ली यात्रा पर आये। उन्होंने अफगानिस्तान में कानून व्यवस्था एवं राष्ट्रीय सुरक्षा मामलों के विभाग के विकास में भारत से मदद का अनुरोध किया एवं इस बात पर भी विशेष बल दिया कि भविष्य में अफगानिस्तान में आतंकवाद को पनपने से पहले ही उखाड़ फंका जायेगा। भारत

सरकार द्वारा अफगानिस्तान के पुर्ननिर्माण में भारत के सहयोग को दोहरा कर काबुल में अपना दूतावास खोल दिया गया। 26–27 फरवरी 2020 को प्रधानमंत्री करजई भारत आने पर भारत के राष्ट्रपति आर.के नारायणन एवं प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा भारत–अफगान संबंधों में प्रगाढ़ मैत्रीयुग की शुरूआत कर अफगान के आर्थिक पुर्ननिर्माण मं ठोस सहयोग एंव सहायता करना सुनिश्चित किया।

अफगानिस्तान की भौगोलिक स्थिति अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसकी सीमा ईरान, पाकिस्तान, चीन, मध्य एशियाई देशों एवं भारत के भूभाग से मिलती है। भारत–अफगान के मध्य संबंध तो वैदिक काल से ही स्थापित हैं किंतु इन दोनों के मध्य कई उतार–चढ़ाव देखने को मिलते हैं। पाकिस्तान का पड़ोसी एवं मध्य एशिया का देश होने के कारण अफगानिस्तान भारत के सामरिक हितों की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। भारत–अफगान के मध्य प्राचीनकाल से ही घनिष्ठ व्यापारिक–सांस्कृतिक संबंध रहे, किंतु फिर भी स्वतंत्रता के पश्चात् पिछली शताब्दियों में दोनों के राजनीतिक संबंधों में कई प्रकार के दौर आए। फिर भी वर्तमान अफगानिस्तान में तालिबान की सत्ता समाप्त होने के बाद से युत–जर्जर एवं आतंकवद से त्रस्त अफगानिस्तान के पुर्ननिर्माण में सहायता प्रदान करने वाला भारत प्रमुख देश रहा। तद्नुरूप भारत–अफगान के राजनीतिक संबंधों को भी नए आयाम मिले। 21वीं सदी में दोनों के संबंध फिर से मजबूत हो गये। 04 अक्टूबर 2011 में अफगान राष्ट्रपति हामिद करजई की भारत यात्रा के दौरान भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह के साथ सामरिक मामले, खनिज संपदा की साझेदारी, तेल और गैस की खेज पर साझेदारी संबंधी तीन समझौते पर हस्ताक्षर किये गये। भारत द्वारा अफगानिस्तान के साथ कई प्रकार के विकासीय समझौते करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर हमेशा एक–दूसरे का समर्थन किया। यह बिन्दु उल्लेखनीय है कि अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान के मध्य आरंभ से ही 'डुरण्ड रेखा; को लेकर विवाद था। अफगानिस्तान के अनुसार पाकिस्तान एक नया राज्य है, ब्रिटिश साम्राज्य का उत्तराधिकारी नहीं इसलिए पाकिस्तान और अफगानिस्तान के मध्य सीमा रेखा का पुर्ननिर्धारण होना चाहिए। वर्ष 1973 में मोहम्मद दाऊद के प्रधानमंत्री बनते ही उन्होंने 'डुरण्ड रेखा' के मुद्दे पर आक्रामक दृष्टिकोण अपनाया।

वर्ष 1978 में प्रधानमंत्री दाऊद की सत्ता मार्क्सवादी समर्थित नेता नूरमोहम्मद तराकी ने पलट दी, परिणाम स्वरूप साम्यवादी शासन को बनाये रखने के लिए अफगानिस्तान में सोवियत संघ ने हस्तक्षेप किया। 27 दिसंबर 1979 को अफगानिस्तान में सोवियत सैनिकों का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप तथा वहाँ उनका 1988 तक बने रहना अफगान संकट को जन्म देता है। इसका तात्कालिक प्रभाव जहाँ एक ओर शीतयुद्ध की शुरूआत थी तो वहीं दक्षिण एशिया में भारत–पाकिस्तान के मध्य हथियारों की होड़ को तीव्रतम करना था। अफगानिस्तान महाशक्तियों के वैचारिक संघर्ष का अखाड़ा बन गया। इस संघर्ष के दौरान भारत ने मध्यमार्गी नीति अपनाकर अफगान की क्षेत्रीय एकता एवं अखंडता का समर्थन किया। अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति कार्टर द्वारा अफगानिस्तान में सोवियत सेनाओं के हस्तक्षेप की निंदा करते हुए इस प्रश्न को सुरक्षा परिषद में उठाया। 14 नवंबर 1985 एवं 04 नवम्बर 1988 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अफगानिस्तान में एक सर्वदलीय सरकार की स्थापना का प्रस्ताव लाया गया। भारत सहित 13 देशों ने इस प्रस्ताव में मतदान में भाग नहीं लिया। इस हस्तक्षेप ने भारत को दुविधापूर्ण स्थिति में डाल दिया। गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाते हुए भारत द्वारा अपने आपको किसी भी पहल से सम्बद्ध करने से इंकार किया गया। गुटनिरपेक्ष आंदोलन अफगान संकट का शिकार होते–होते बच गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की मध्यस्थता से 14 अप्रैल 1988 को जेनेवा समझौता–धरा सोवियत सैनिकों की वापसी एवं अमरीका–सोवियत द्वारा अफगान दलों या गुटों को किसी भी प्रकार की सहायता न दिये जाने का आश्वासन मिला। इस समझौते के संबंध में भारत द्वारा आशा व्यक्त की गई कि क्षेत्र में तनाव अत्याधुनिक हथियार जमा करने का बहाना समाप्त होने के साथ–साथ इन हथियारों को हटाने का काम भी शुरू होगा। वर्ष 1996 में पाकिस्तान समर्थिक तालिबानियों ने काबुल पर नियंत्रण स्थापित कर पाकिस्तान, सऊदी अरब एवंयू.ए.ई. तीनों राज्यों को मान्यताप्रदान की। संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय, भारत, रूस, ईरान, मध्य एशियाई राज्यों ने तालिबानी सरकार को मान्यता न देकर उत्तरी–गठबंधन के नेता रब्बानी को मान्यतादी। तालिबानियों का सत्ता में आना भारत के लिए चुनौतीपूर्ण था। इस कट्टरपंथी विचारधारा के कारण पंथनिरपेक्ष लोकतांत्रिक मूल्यों का खतरा था। अगानिस्तान में सक्रिय आतंकवादियों द्वारा कश्मीर में भी सीमापार आतंकवाद को प्रोत्साहित किया जिससे अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान का विकास आतंकवाद के

एक नए गढ़ के रूप में हुआ। तालिबान के कारण पाकिस्तान को अत्यधिक सामरिक लाभ हुआ। तालिबान की बढ़ती हुई गतिविधियों के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1998 मं तालिबान सरकार पर प्रतिबंध लगाए। कीनिया तथा तंजानिया में अमरीकी दूतावासों पर अलकायदा के बम विस्फोट के परिणामस्वरूप अमरीका ने भी तालिबान को प्रतिबंधित कर दिया। सितंबर 2001 में विश्व व्यापार केन्द्र पर आतंकी हमले के पश्चात् अमेरिका ने 'आपरेशन इनड्यूरिंग फ्रीडम' आरंभ करतालिबान शासन का अंत कर दिया।

शीतयुद्ध के वैमनस्यपूर्ण वातावरण में केवल अफगानिस्तान ही एकमात्र देश था, जहाँ महाशक्तियाँ एक–दूसरे के साथ मिलकर परस्परिक सहयोग करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इस अवधि में श्रीलंका, बर्मा, नेपाल को महाशक्तियों ने कुल मिलाकर जितनी आर्थिक सहायता दी उससे कहीं अधिक अकेले अफगानिस्तान ने ही प्राप्त की। अफगानिस्तान में सम–सामीत्य की प्रक्रिया विविधारूप रही। अमरीका ने ज्यों ही पाकिस्तान को सैनिक सहायता देना शरू की, अफगानिस्तान को अपनी प्रतिरक्षा की चिंता होने लगी। पख्तूनिस्तान के विवाद को लेकर पाकिस्तान से कभी भी युद्ध छिड़ सकता था। अतः अब अफगानिस्तान आर्थिक–सैनिक सहायता के लिए सोवियत संघ की ओर अभिमुख हुआ। सोवियत संघ से घनिष्ठता बढ़ाते हुए भी प्रधानमंत्री सरदार दाऊद ने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि यदि अन्य महाशक्तियां अफगानिस्तान की सहायता करना चाहें तो उनका स्वागत है। वास्तव में अफगान–सोवियत सामीत को अफगान शासकों ने जिस नाटकीयता के साथ विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अमेरिका को वे अफगानिस्तान में रूचि दिखाने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। एक बहुत बड़ी सीमा तक अफगान राजनीति सफल भी हुई, सोवियत सहायता के मुकाबले में अमरीकी सहायता कार्यक्रम भी चलने लगा। भारत ने अफगानिस्तान के प्रति तटस्थता के रूख को अपनाते हुए किसी भी देश द्वारा अफगानिस्तान के आतंरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की निंदा की।

पाकिस्तान के साथ भारत–अफगान संबंध सदैव अच्छे नहीं रहे, प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा अफगानिस्तान के राष्ट्रपति नजीबुल्ला को दिल्ली आमंत्रित कर साहसिक कार्य किया गया। ऐसा करके भारत ने अमेरिका और पाकिस्तान दोनों को कूटनीतिक पराजय का अहसास दिलाने की चेष्टा की। अफगानिस्तान में स्थायित्व एवं विकास संबंधी मुद्दों की समीक्षा के लिए उसकी सहायता करने वाले देशों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 20 जुलाई 2010 को काबुल में हुआ, जिसमें भारत, अमरीका, पाकिस्तान, ईरान के विदेश मंत्री शामिल हुए। भारतीय विदेश मंत्री एम.एम. कृष्णा द्वारा युद्ध प्रभावित इसदेश में स्थायित्व के लिए अफगानिस्तान के नेतृत्व का समर्थन किया गया।

भारतीय हितों के संदर्भ में अफगानिस्तान की भूमिका महत्वपूर्ण है। पारस्परिक रूप से दक्षिण एशिया और विशेषकर भारत–अफगान की सभ्यताओं में बहुत अधिक समानता रही। तालिबान के पतन से अफगानिस्तान में भारत की भूमिका में महत्वपूर्ण मोड़ आया। 9/11 की घटना के बाद अमेरिका ने अफगानिस्तान पर हमला किया तब भारत ने अमेरिका को गोपनीय सूचनाएं एंव अन्य सहायता प्रदान करने की पेशकश की। इतिहास में तालिबान शासनकाल को छोड़कर भारत–अफगानिस्तान के बीच हमेशा ही मैत्रीपूर्ण संबंध रहे। भू–सामरिक स्थिति में होने के कारण अफगानिस्तान भारत के लिए अत्यधिक महत्व रखता है। आज भारत, अफगानिस्तान के पुनर्निमाण में सबसे अग्रणी देश है। अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण के लिए दिसंबर 2001 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रायोजित 21 देशों का सम्मेलन न्यूयॉर्क में हुआ। भारत अफगानिस्तान को आर्थिक सहायता देने वाला 5वां बड़ादेश है। भारत द्वारा काबुल में हबीबी स्कूल, संसद के निर्माण में सहयोग, सलमा बांध शक्ति परियोजना, संचार, कृषि, स्वास्थ्य के क्षेत्र में सहायता उपलब्ध करवायी गई। एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम के अन्तर्गत भारत–अफगानिस्तान के मध्य सामरिक समझौता हुआ, जिसमें अफगानिस्तान भारत के साथ समझौता करने वाला पहला दक्षेस राष्ट्र है। 2011 में भारत ने अफगानिस्तान में शांति एवं स्थिरता बनाये रखने के लिए भारत, अफगानिस्तान एवं अमरीका नामक त्रिकोणीय बैठक का आयोजन किया।

भारत द्वि–पक्षीय विकास सहयोग को मान्यता देते हुए सामाजिक, आर्थिक और मानव संसाधन विकास के लिए अफगानिस्तान की सहायता कर रहा है। इन सहायताओं के अन्तर्गत परियोजनाओं के सकारात्मक प्रभावों के आधार पर दोनों देश एक महत्वाकांक्षी और दूरदर्शी अगली पीढ़ी की 'नई विकास भागीदारी' पर

कार्य कर रहे। दोनों देश 116 सामुदायिक विकास परियोजनाओं पर कार्य करने के लिए सहमत हुए, जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई, पेयजल, खेल, नवीकरणीय ऊर्जा और प्रशासनिक संरचना के क्षेत्र शामिल हैं, अफगान शरणार्थियों के पुर्नवास के लिए कम लागत पर घरों का निर्माण एवं कंधार में राष्ट्रीय कृषि विज्ञान प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए भारत ने सहयोग का विश्वास दिलाया। पंजाब के अमृतसर शहर में आयोजित छठे 'हार्ट ऑफ एशिया' दिसम्बर 2016 के दौरान भारत–अफगान संबंधों में एक नई दृढ़ता और एकता देखने को मिली। इस सम्मेलन में अफगानिस्तान में हक्कानी नेटवर्क एंव भारत में केन्द्रित लश्कर–ए–तैयबा और जैश–ए–मोहम्मद स संबंधित आतंकियों को सुरक्षित शरण प्रदान करने के संदर्भ में पाकिस्तान की आलोचना की गई। अफगानिस्तान के सहयोग के लिए स्थापित इस संगठन के 14 देश चीन, ‘रान, रूस, सऊदी अरब, पाकिस्तान सहित भारत भी शामिल है। इसमें आतंकवाद, ड्रग्स, गरीबी, कट्टरता इत्यादि विषय सम्मिलित हैं जिनसे अफगानिस्तान पीड़ित है। इस सम्मेलन का मूल विषय पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद का विरोध एवं अफगानिस्तान का विकास था। वर्ष 2016 में इसका सम्मेलन अमृतसर में हुआ, जिसमें आतंकवाद को वैश्विक समस्या बताते हुए 'अमृतसर घोषणापत्र' जारी किया गया।

21वीं सदी में भारत–अफगानिस्तान के राजनीतिक, आर्थिक, सामरिक, रणनीतिक संबंधों को नवीन आयाम प्रदान करने की कोशिश की जारही है ताकि भारत का पड़ोसी अफगानिस्तान वर्तमान के वैश्विक युग में एक सशक्त राष्ट्र के रूप में उभरकर विश्व के सामने आये। अफगानिस्तान काफी लम्बे समय तक राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजरा, जिसके कारण उसकी शैक्षणिक एंव आर्थिक व्यवस्था जर्जर हो चुकी थी। अफगानिस्तान में पाकिस्तान का स्थायी एजेंडा वहाँ अपनी सामरिक पहुँच बनाना है, तो भारत का भी स्थायी लक्ष्य स्पष्ट है कि अफगानिस्तान के विकास में लगे करोड़ों डालर व्यर्थ न जाने पाए, काबुल में मित्र सरकार बनी रहे, ईरान–अफगान सीमा तक निर्बाध पहुंच रहे और वहाँ के वाणिज्य दूतावास काम करते रहें। इसके लिए भारत को यदि अपनी कूटनीति में बदलाव करने भी पड़े तो उसे पीछे नहीं हटना चाहिए, क्योंकि समय की यही मांग है।

कई चुनौतियों के बावजूद भारत–अफगान संबंध पहले से अधिक मजबूत हुए हैं। अफगानिस्तान में निरंतर पुनर्निमाण और सामाजिक आर्थिक विकास की भारतीय नीति इस युद्धगस्त देश में शांति और समृद्धि लाने में मदद की। अफगानिस्तान मं भारत की छवि आज भी सबसे लोकप्रिय देश के रूप में है। इन दोनों देशों को संबंधों की नई दिशा में आगे बढ़ने के साथ–साथ छोटी–बड़ी चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार रहना होगा।

भारतीय विदेश नीति के अनुसार अफगानिस्तान और पाकिस्तान में आतंकवादियों की उपस्थिति भारत सहित समूचे विश्व के लिए सबसे बड़ा खतरा है, इसीलिए भारत अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक और स्थायी सरकार का समर्थक है। वर्तमान समय में भारत अफगानिस्तान के विकास में सक्रिय सहायता है, किंतु भारत का झुकाव किसी एक समूह के साथ है। भारत ने अपनी विदेश नीति में मध्य एशिया को जोड़ने की नीति अपनाकर अपनी स्थिति को और अधिक सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया।

भारत–अफगान संबंध बेहद मजबूत और मधुर हैं, भारत–अफगानिस्तान में अरबों डालर लागत वाले कई मेगा प्रोजेक्ट्स पूरे कर चुका है और कुछ पर अभी भी काम चल रहा है। अफगानिस्तान के शीर्ष नेता समय–समय पर भारत दौरे पर आते रहते, किंतु फिर भी समय–असमय ऐसी गतिविधियाँ भी होती रहती हैं जो दोनों देशों के संबंधों में चुनौती प्रतीत होती हैं। अफगानिस्तान में भारत मानवीय और विकासशील परियोजनाओं के लिए प्रतिबद्ध है, किंतु सुरक्षा के मसलों पर क्या कुछ किया जा सकता है, यह अभी भारत के समक्ष एक बड़ी चुनौती है। इस देश के विकास कार्यों के अलावा भारत को अन्य पड़ोसी देशों के साथ भी क्षेत्रीय सहयोग बनाने की आवश्यकता है।

इसके लिए परस्पर लाभप्रद दीर्घकालीन सुरक्षा एवं आर्थिक उन्नति के समीकरण बनाने का कार्य करना होाग। भारत की एकता और अखण्डता के बचाव के लिए राष्ट्रीय रक्षा की क्षमता विकसित करनी होगी, जिसमें भारत किसी एक देश या ग्रुप पर आश्रित न हो। समग्र रूप से हमारा उद्देश्य यथासंभव किसी प्रकार का विरोध किए बिना या अलग हुए बिना विकास करना एवं अपनी शक्ति को बढ़ाना है। वैदेशिक स्थिति के संदर्भ

में कूटनीतिक कौशल चतुराई और लचीलेपन की आवश्यकता है, जिससे कि सर्वोच्च स्थिति प्राप्त की जा सके। निष्पक्ष और न्यायपूर्ण विश्व व्यवस्था तैयार करने के लिए इक्कीसवीं सदी में भारत की विदेश नीति का प्रयोजन यही होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध : तपन बिस्वाल, मैकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली संस्करण–2010, पृष्ठ 91
2. वही, पृष्ठ 94
3. वही, पृ. 152
4. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध : प्रो. बी.एम. जैन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर संस्करण–2017 पृ. 265
5. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध : डॉ. एस.सी. सिंहल, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा संस्करण–2019, पृ. 354
6. वही, पृ. 374
7. राजनीति विज्ञान : एक समग्र अध्ययन राजेश मिश्रा, गोल्डन पिकॉक पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण–2017, पृ. 613
8. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध : मुन्द्रिका प्रसाद, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली संस्करण–2005, पृ. 155
9. स्वतंत्र भारत की विदेश नीति : डा. मुनेश कुमार, डिस्कवरी पब्लिशिंक हाउस, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण–2010, पृ. 206
10. वही, पृ. 212

''वागड़ में भीलों के लोकगीतों की ऐतिहासिक झलक''

डॉ. प्रेमचन्द डाबी
पी.डी.एफ., इतिहास विभाग
मो.ला.सु. विष्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

भील भारत की आदिवासी जातियों में से एक प्रमुख जाति है। जनसंख्या की दृष्टि से जनजातियों में भील जनजाति प्रथम स्थान रखती है। भील जनजाति प्रमुख चार राज्यों मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र में पाई जाती है। इन्हीं चार राज्यों की सीमाओं पर भीलों का जमावाड़ा देखने को मिलता है इसलिये ये चार राज्य भीलों के घर माने जाते है।

राजस्थान में भील क्षैत्र का फैलाव व्यापक है लेकिन इनका बाहुल्य राज्य के दक्षिण भाग में ज्यादा देखने को मिलता है। दक्षिण राजस्थान के बांसवाड़ा, डूंगरपुर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, प्रतापगढ़, सिरोही, राजसमंद, भीलवाड़ा जिलों में भील सर्वाधिक निवास करते है।

भील समुदाय भिन्न–भिन्न राज्यों में अनेक जनजातियों का द्योतक है जैसे बारेला, भागलिया भील, भील गरासिया, भील–मीणा, भीलाला, धोली भील, डुंगरीया भील, भील गरासिया, पावरा भील, लंगुरिया भील, रावल भील, तंककर भील, वासवा भील, पटेलिया भील, तादवी भील, मावची भील, गमेती भील, गावित पदणी, पारधी, डांग, कोकणा, खानदेश, नायक, भीम, भील पचिमा, भील वालकी, राठिया भील प्रमुख है।

इन भील समुदाय में विद्वानों ने भीलों की अनेक उपजातियां (अटक) दिखाई है। मैंने अपने शोध के माध्यम से भीलों की करीब 100 उपजातियां खोज निकाली है।

भीलों की उत्पति के बारे में कई विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये है। कुछ विद्वान भील शब्द की उत्पति संस्कृत भाषा के बिल्ल शब्द से मानते है जिसके अर्थ ''छेद करना'', ''निशाना लगाना'' या ''मारना'' है। चूंकि भील लोग निशाना लगाने में दक्ष होते है अतः इसी कारण इन्हें भील कहा जाता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार भील शब्द द्रविड शब्द ''बील'' या बिल्लू से बना है जिसका अर्थ धनुष अथवा कमान है। भील द्वारा धनुष धारण करने के लिए इन्हें भील कहा जाता है।[2]

भील शब्द का समानार्थी ''पालवी'' (पालव्या) शब्द है जो पाल (भील बस्ती) से उद्भूत है। राजस्थान में भील बस्तियों के लिये आमतौर पर ''पाल'' शब्द का प्रयोग किया जाता है जैसे भोराई पाल, बारापाल आदि।[3]

भीलों का इतिहास हमेशा गौरवपूर्ण रहा है इनका देश में कई स्थानों पर शासन व उनके ठिकाने रहे थे।[5] सर्वप्रथम देश में ये शासक वर्ग की गिनती में शुमार थे। राजस्थान में भीलों के द्वारा कई शहर बसाये गये है। कोट्या भील के नाम पर कोटा, कुशला भील के नाम पर कुशलगढ़, बांसीया भील के नाम पर बांसवाड़ा डूंगरीया भील के नाम पर डूंगरपुर बसा हुआ है।[4]

इस प्रकार गलिया भील के नाम से गलियाकोट, डोलिया भील द्वारा प्रतापगढ़ नाम से नगर बसे हुए है। भीलों द्वारा इन स्थानों की स्थापना करने का जिक्र उनके लोक गीतों में भी देखने को मिलता है।

बांसवाड़ा नो बासियो भील
कांटा नो कोटियो भील
जां जाय वां, भील नू राज 2
डुंगरपुर ना डुंगरीयो भील
प्रतापगढ़ नो डोलियो भील
जां जाय वां भील नू राज 2
बांसवाड़ा मां.....

गलिया कोट नो गलियो भील
कुशलगढ़ नो कुशलो भील
जा जाएं वां भील नू राज
बांसवाड़ा मां बासियो..... [6]

भारतीय इतिहास के पन्नों से ज्ञात होता है कि भील रणबांकुरो ने देश के अनेक हिस्सों पर अपना अधिकार स्थापित करके शासन किया तथा अपनी प्रबन्ध पटुता से राजनीतिज्ञों को एक बार नहीं वरन हजारों बार चकित किया था।[7]

इतिहास के पन्नों से यह भी ज्ञात होता है कि भील जाति ने जिन लोगों का साथ दिया और जिनका जीवन बचाया उन्हीं जातियों ने भीलों पर अत्याचार किये। अत्याचार भी ऐसा की जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। राजपुत राजाओं ने बार–बार भीलों पर आक्रमण कर वहां से भीलों को भगा दिया और वे वही बस गये।[8]

लेकिन समय की आवश्यकतानुसार भीलों की शोर्यवीरता को देखकर राजपुतों ने भीलों को अपना प्रिय बना लिया और भीलों ने भी राजपुतों को अपना राजा मान लिया।

कर्नल टॉड ने बापा रावल के राजतिलक के बारे में भी लिखा है कि बापा रावल को राजा बनाने में उसके साथियों में से दो भील थे। इन भीलों ने अपने वंशजों के द्वारा राजतिलक करने की परिपाटी अपनाई। बाद में बप्पा रावल के वंशजों को भी ये भील अंगूठे से राजतिलक करते थे।[9]

इस प्रकार इन घटनाओं से ज्ञात होता है कि राजपुत शासक अपने राज्य में भीलों को काफी महत्व देते थे तथा अपनी सत्ता में भागीदार बनाकर अपने राज्य को सुरक्षित रखने का प्रयास करते थे।

मध्यकालीन इतिहास में भी भीलों के अनेक संदर्भ पाये जाते है। भील समुदाय राजपुतों से काफी संबंधित रहा है। महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी की फौज में अनेक भील शामिल थे। हल्दीघाटी की लड़ाई में भीलों ने महाराणा प्रताप की मुगलों के विरोध में सहायता की।[10]

भीलों की राजपुत शासकों से निकटता एवं वफादारी के कारण मेवाड़ राज्य के राज्य चिन्ह में चित्तौड़ के किले की एक तरफ महाराणा प्रताप एवं दूसरी तरफ भील सरदार लक्षित है। इसके भीलों के उत्कर्ष एवं शक्तिमान होने का पता चलता है।

भीलों के मराठों के साथ सम्बंध अच्छे नहीं रहे। मराठों ने 1724 में मेवाड़ तथा 1728–29 में वागड़ (बांसवाड़ा–डूंगरपुर) में काफी लूटमार व अत्याचार किये जिसका खामियाजा गरीब भीलों को भुगतना पड़ा। पिण्डारियों ने भी भीलों के गांव बर्बाद कर दिये। पिण्डारियों की सूचना पाते ही भील अपने घरों, खेतों, खलिहानों को छोड़कर जंगलों में छीप जाते थे।

आर.वी. रसैल अपने ग्रन्थ में लिखता है कि ''मराठे एवं पिण्डारियों द्वारा भीलों को पकड़ने के बाद सैकड़ों भीलों को चट्टानों से फैंक दिया जाता। क्षमा करने के बहाने इकट्टा कर इनके सिर कलम कर दिये जाते, बहुतों को बारूदों से उड़ा दिया गया। इनकी महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया गया और बन्द कमरों में बन्द करके धुओं से घोट कर मारा गया।'' कर्नल टॉड व विलियम हंटर तथा मोरिस कास्टियर्स ने भी मराठा व पिण्डारियों द्वारा अत्याचारों को मार्मिक वर्णन किया है।

मराठा व पिण्डारियों द्वारा भीलों पर शोषण व अत्याचारों के बाद ब्रिटिश लोग भी इन अत्याचारियों में शामिल हो गये। भील अब गैर भील को अपना दुश्मन समझने लगे और उनके विरूद्ध अपनी सुरक्षात्मक गतिविधियां रात को करते थे। इसलिये अलेक्जेण्डर के. फोरेब उन्हें ''रात के सैनिक'' की उपाधि देते है।[11]

अंग्रेजों ने भीलों को दबाने के लिये ''मेवाड़ भील कोर'' भील एजेन्सी की स्थापना कर भीलों की शक्ति को कुचल डाला। इन सैनिकों ने भलों पर जानवरों सा व्यवहार किया उन पर कई प्रकार के कर लगा दिये।[12]

1818 के पश्चात देशी नरेशों ने ब्रिटिश कम्पनी से संधियां करने की प्रक्रिया शुरू की तो भील काफी नाराज हो गये। उन्होंने स्थानीय नरेशों को अंग्रेजी से संधि न करने के लिये चैताया और कहा कि इसके गलत परिणाम निकलेंगे। लेकिन देशी स्थानीय नरेशों ने भीलों की आवाज को नहीं समझ सकें। जिसका संदर्भ हमें लोक गीतों के माध्यम से सुनने में मिलता है।

राजा तने खबर नथी रे भूरो फरंगी आवे रे
भूरा भूरा पोंदा वालो रे भूरो फरंगी आवे रे
मेवाड़ ने पेले काठे रे भूरो फरंगी आवे रे
वागोड ने पेले काठे रे भूरो फरंगी आवे रे
अहमदाबाद ने पेले काठे रे भूरो फरंगी आवे रे
बन्दुका नी गोळी वाजे रे भूरो फरंगी आवे रे
हरिया नी हाण छुटे रे भूरो फरंगी आवे रे
भाला भळकता आवे रे भूरो फरंगी आवे रे
राजा तने खबर नथी रे भूरो फरंगी आवे रे[13]

भावार्थ : इस गीत में भीलों द्वारा गाया गया है कि हे राजा तुझे खबर नहीं, तु अभी भी नींद में सोया हुआ है। देशी नरेशों से ब्रिटीश कम्पनी के लोग संधिया करने आ रहे है। आप इनसे संधि मत करना। हम भील लोग आपके सहयोग के लिये हमेशा तैयार है ये अंग्रेज मेवाड़, वागड़ की सीमा पर पहुंच चुके है और आप अभी भी निद्रा में है।

अंग्रेजो का मुकाबला करने के लिये उस समय भीलों ने देशी नरेशों को चेताया तथा अंग्रेजों क खिलाफ लड़ने के लिये भीलों ने हथियारों का जुगाड़ करना प्रारंभ कर दिया तथा भीलों को एकजुट करने का प्रयास इस लोकगीत हमें देखने को मिलता है।

घुघेरी टीमण नो रईडो लाग्यो रे वालेमां
रतलाम वाळा कारीगर तने विदवुं रे वालेमां
ताजी ताजी तलवारें घडे आलजो रे वालेमां
तलवारां ने टेके लड़ाई लडहूं रे वालेमां
दाहोद वाळा लोवार तने विदवू रे वालेमां
गोफण, धारियां घड़ी आलजो रे वालेमां
गोफण ने टेके लड़ाई लडहू रे वालेमां
झाबुआ वाळा लुवार तने विदवूं रे वालेमां
हरियां कामठी घड़ी आलजो रे वालेमां
हरियां कामठी ने टेके लड़ाई लडहू रे वालेमां

भावार्थ – गीत में भीलों द्वारा गाया गया है कि हे भीलों अंग्रेजों द्वारा हमारे देशी नरेशों के साथ लड़ाई लड़ने वाले है। हमें उनकी सहायता के लिये तैयार रहना है। भीलों के गीत के माध्यम से रतलाम, झाबुआ, दाहोद, कुशलगढ़, डूंगरपुर से हथियार घड़ने वाले, तीर कमान बनाने वाले, सभी लोहारों को सुचित किया के आप हथियार बनाना शुरू कर दो आपके द्वारा बनाये गये हथियारों से ही लड़ाई लड़ कर हम विजय प्राप्त करेंगे।

भीलों पर होने वाले अत्याचार, शोषण के खिलाफ स्थानीय शासकों तथा अंग्रेजों के खिलाफ गोविन्द गीरी मानगढ़ में 1913 में करीब 1 लाख भीलों को सम्बोधित कर थे उस समय स्थानीय शासकों व अंग्रेजों ने मिलकर हमला कर दिया जिसमें करीब 1500 भील शहीद हुए। इस हत्याकाण्ड को वागड़ का जलियावाला बाग काण्ड कहा जाता है।[15]

भीलों में राजनैतिक एवं सामाजिक एकता को बनाये रखने के लिये गुरू गोविन्द गिरी के नेतृत्व में ऐतिहासिक लोकगीत गाया गया था। वह आज भी भीलों में काफी लोकप्रिय है जो निम्न है –

भूरेटिया हट नई मानू रे नई मानू
मानगढ़ मारी धूणी है बेणेश्वर मां मारा मन्दर है
भूरेटिया हट नई मानू रे नई मानू
अहमदाबाद मारी जाजम है बामणिये मारू भाषण है
भूरेटिया हट नई मानू रे नई मानू
बामणिये मारू भाषण है जयपुर मारी कलम है
भूरेटिया हट नई मानू रे नई मानू
जयपुर मारी कलम है दिल्ली मां मारी कुर्सी है
भूरेटिया हट नई मानू रे नई मानू[16]

भीलांचल में अंग्रेजों व सामन्तों द्वारा भीलों पर काफी अत्याचार एवं वेठ वगार कराया जाता था। यह दुखड़ा सुनकर मामा बालेश्वर दयाल 1930 के आस पास मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के बामनिया आकर आंदोलन का केन्द्र बनाया और यहां से ही उन्होंने बांसवाड़ा डूंगरपुर, झाबुआ, दाहोद, पंचमहल, रतलाम, अलिराजपुर, प्रतापगढ़, में निवासरत भीलों के लिये कार्य प्रारंभ किया। भीलों में वे मामाजी के रूप में विख्यात हुए। उन्होंने अंग्रेजों व सामन्तों के खिलाफ आवाज उठाई। भील अंग्रेजों के राज में कितने दुःखी थे यह सब इस लोकगीत में देखने को मिलता है।

अंगरेजा ना राज मां करसाण वेठें घणी करतो रे।
वेठे घणी करतो करसाण कुकडां बोलतां उठतो रे।
कुकड़ा बोलतां उठाते करसाण लादोड़ो होरातो रे
लादाडो होरतो करसाण घोड़ां न पाणी पातो रे
बेठें घणी करतो करसाण घटियें दईणां दळतो रे
अगरेजां ना राज मां करसाण वेठे करतो रे

इस वेठ वगार के खिलाफ जब मामाजी ने अंग्रेजों के विरूद्ध आवाज उठाई तो भीलों ने उनके कार्यों को लोक गीतों में समाहित कर लिया। इस गीत में भील राजाओं को पूछ रहे है कि मामा बालेश्वर दयाल ठेट यू.पी. से आकर हमारे लिये लड़ाई लड़ रहे है पर आप हमारे राजा होकर चुप चाप बैठे है आप हमारे लिये लड़ नहीं रहे है। जो इस लोकगीत में देखने को मिलता है

बमणिया वाळी रेल मां रोळो मच्यू मामाजी
राजा ना रजवाड़ां कारे गमायां
हुरमल पुसेडा पुसे नाथू भाणेजां
राजां ना रजवाडां कारें गमाया
बमणीयां वाळी रेल मां रोळों मच्यू मामाजी
राजां नी रानीयें कारें गमायी
बमणीयां वाही रेलमां रोळों मच्यू मामाजी
राजां ना कुंवर कारे गमाया
बमणीया वाळी रेल मां रोळो मच्यू मामाजी
राजा नी तोपें कारें गमायी।[17]

देश की स्वतंत्रता के लिये गांधीजी के योगदान को भील कैसे भूल सकते है। आज भी भील शादी ब्याह सामाजिक तथा राष्ट्रीय पर्वों पर इस गीत को गाकर गांधीजी को श्रंद्धाजली देते है।

गांधीजी नो कायदो मने हारो वालो लाग्यो
भागेली झोपड़ी मां रेता – 2
घणा फोड़ा करीया रे गांधीजी नो कायदो मने हारो वालो लाग्यो
भागेली ठोमणीं मां खातां – 2

घणा फोड़ा करीया रे गांधीजी नो फायदो मने हारो वालो लाग्यो
सत्य नी ते वाट मां साल्या
घणा फोड़ा करीया रे गांधीजी नो कायदो मने हारो वालो लाग्यो
अहिंसानी ते वाट मां साल्या
घणा फोड़ा करीया रे गांधीजी नो कायदो मने हारो वालो लाग्यो[18]

देश में आज सबसे बड़ी समस्या है तो भ्रष्टाचार की। और भ्रष्टाचार से भील काफी शोषित हुआ है। देश की आजादी के बाद गांधीजी इस धरती पर नहीं रहे। लेकिन भ्रष्टाचार के खिलाफ महात्मा गांधी को याद करते हुए भील इस लोकगीत को गाते है और कहते है कि बापू इस दुनिया में, इस देश में जहाँ जाऊँ वहां भ्रष्आचार ही भ्रष्टाचार है कोई भी विभाग ऐसा न रहा जहां भ्रष्टाचार न हो।

दनियां मां जाऊं ते ठगारां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
स्कूला मां जाऊं ते मास्तरां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
डोगोरां मां जाऊं ते तरकडां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
कोरेट मां जाऊं ते वकीलां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
दाखाना मां जाऊं ते डाक्टरां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
आफिसां मां जाऊं ते बाबुजियां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
थाणा मां जाऊं ते सपाईयां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
गाड़ियां मां जाऊं ते कन्डेक्टर नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी
दनियां मां जाऊं ते ठगारां नी मार बापू गांधी ओ बापू गांधी

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एम मोनियर विलियम्स – संस्कृत इंग्लिश डिक्सनरी, प्रथम संस्करण, 1899 पुनमुर्दण मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, 1963, पृ. 757
   – पलात रामचन्द्र, राजस्थान की वन विहारी जातियां, अ. 6, पृ. 96
2. राठौड़ अजेय सिंह, भील जनजाति शिक्षा और आधुनिकरण अ. 2, पृ. 22
   – श्री मेहता जोधसिंह, आदिवासी भील, पृ. 3–4, 7
3. मेहता प्रकाशचन्द्र, भारत के आदिवासी, 1994, शिवा पब्लिशर्स डिस्ट्री ब्यूटर्स हिरणमगरी, उदयपुर, राजस्थान
4. गोरी शंकर ओझा – राजपुताने का इतिहास, खण्ड – 3, भाग – 2, बांसवाड़ा का इतिहास, वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1937, पृ. – 107
   – प्रकाशचन्द्र मेहता – भारत के आदिवासी, पेज नं. 62, शिवा पब्लिशर्स, हिरणमगरी, उदयपुर
   – श्यामलदास, पूर्वाक्त, द्वितीय भाग, खण्ड – 2I, पृ. 1005
5. देवीलाल – भील देश राज्य एवं ठिकाने, एकलव्य आदिवासी प्रकाशन, जोधपुर, 1999
6. गांगजी कटारा, गांव झिकली, उम्र 95, साक्षात्कार दिनांक 10.12.2015, त. कुशलगढ़, जि. बांसवाड़ा (राज.)
7. श्री चन्द्र जैन – वनवासी भील और उनकी संस्कृति, पृ. 9
8. मोहनलाल जोड़ – भील संस्कृति, पृ. 33, प्रकाशक, जवाहर कला केन्द्र जयपुर
9. जॉर्ज कास्टैयर्स शेफर्ड ऑफ उदयपुर एंड द लैण्ड ही लण्ड, लंदन 1926, पृ. 25
10. वीर विनोद द्वितीय भाग, खण्ड 1, पृ. 153–155
11. एनल्स ऑफ द प्रोविन्स ऑफ द गुजरात इन वेस्टर्न इण्डिया, 1993, पे. 104
12. मोहनलाल जोड़ – भील संस्कृति पृ.0 24 जवाहर कला केन्द्र, जयपुर, 2015.
13. गांगजी कटारा, गांव झिकली, उम्र 95, साक्षात्कार दिनांक 10.12.2015
14. वही
15. मानगढ़ संदेश साहित्यिक पत्रिका, अंक 25, माह दिसम्बर, 2012
16. वहीं
17. डाबी प्रेमचन्द, जनजातीय लोक साहित्य – अंकुर प्रकाशन, उदयपुर (राज.) 2007–08
18. वहीं

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
खंड–**10** अंक–**42** वर्ष–**2021** (सितम्बर 2021) आईएसएसएनः **2320–2467** आईएपफः **5.4**

राजस्थान की प्रमुख घुमन्तु जनजातियां
(एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ. लोकेश पारगी
श्री योगेश्वर स्नातकोत्तर महाविद्यालय
आमलीपाड़ा, सज्जनगढ़, जि. बांसवाड़ा।

राजस्थान भारत के 6 जनजाति बहुल राज्यों में से एक है। यहां मुख्यतः भील, मीणा, गरासिया, डामोर और सहारिया जनजातियां निवास करती है। वैसे तो राजस्थान में कुल 12 प्रकार की जनजातियां निवास करती है। जिनमें कथौड़ी, कंजर, सांसी और बावरिये आदि घुमन्तु जनजातियां है। घुमन्तु जनजातियों की आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति अत्यधिक दयनीय है। वे अपने परिवार का भरण पोषण करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करते हुए अपना भरण पोषण करती है। इन जनजातियों का अपना परम्परागत व्यवसाय समाप्त हो गया है। वर्तमान में वे विभिन्न प्रकार के व्यवसायों से अपना जीवन निर्वाह कर रहे है।

कथौड़ी जनजाति –

राज्य की कुल आबादी का 52 प्रतिशत कथौड़ी जनजाति उदयपुर जिले की कोटडा, झाडोल एवं सराड़ा पंचायत समितियों में बसे हुए है। शेष मुख्यतः डूंगरपुर, बारां एवं झालावाड़ में बसे हुए है। ये महाराष्ट्र के मूल निवासी है। खेर के पेड़ से कत्था बनाने में दक्ष होने के कारण वर्षो पूर्व उदयपुर के कत्था व्यवसायियों ने इन्हें यहां लाकर बसाया। कत्था तैयार करने में दक्ष होने के कारण से ये कथौड़ी कहलाएं।

2011 की जनगणना के अनुसार कथौड़ी जनजाति की कुल आबादी 4833 है। राज्य सरकार द्वारा पर्यावरण की दृष्टि से कथौड़ी के कार्यो को प्रतिबन्धित घोषित कर दिये जाने के कारण कथौड़ी लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। आज ये जनजाति समुदाय जंगल से बांस, महुआ, शहद, सफेद मूसली, गौंद, कोयला एकत्र कर और चोरी–चुपके लकड़ियों को काटकर बेचने तक सीमित हो गई है। इस जनजाति का शैक्षिक एवं आर्थिक स्तर बहुत ही न्यून है। कथौड़ी जंगलों व पहाड़ों में रहने वाली ऐसी जनजाति है जो स्वभावतः अस्थाई एवं घुमन्तु जीवन जीती आ रही है। कथौड़ी लोग घास–फूस, पत्तों एवं बांसों से बने झोंपड़ों जिन्हें खोलरा कहते है में रहते है। इनके परिवार आत्मकेन्द्रित होते है।

प्रमुख विशेषताएं –

1. कथौड़ी जंगलों व पहाड़ों में रहने वाली ऐसी जनजाति है, जो स्वभावतः अस्थाई एवं घुमन्तु जीवन जीती है।
2. खेर के जंगलों से कत्था तैयार करने के अलावा मछली पकड़ना, कृषि कार्य से यह जनजाति अपना गुजर बसर करती है।
3. परिवार आत्मकेन्द्रित होते है।व्यक्ति शादी होते ही अपने मूल परिवार से अलग हो जाता है। नाता करना, विवाह विच्छेद एवं विधवा विवाह प्रचलित है।
4. कथौड़ी मांसाहारी भी होते है। दैनिक खानपान में मक्का ज्वार बंटी आदि की रोटी प्याज आदि के साथ खाते है। चावल उनको प्रिय है पेय पदार्थो में दूध का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता है।
5. स्त्रियां मराठी अंदाज में साड़ी पहनती है जिसे फड़का कहते है गहने पहनने का कोई रिवाज नहीं है।
6. शरीर पर गोदने का महत्व है।
7. इस जनजाति में मावलिया नृत्य एवं होली नृत्य प्रमुख है।

8. मावलिया नृत्य नवरात्रों में पुरूषों द्वारा किया जाता है। इसमें 10–12 पुरूष ढोलक, टापरा एवं बांसली की ताल पर गोल–गोल घूमते हुए नाचते है।
9. होली नृत्य में कथौड़ी स्त्रियां होली के अवसर पर एक दूसरे का हाथ पकड़कर नृत्य करती है। नृत्य के दौरान पिरामिड बनाती है। पुरूष उनकी संगत में ढोलक घोरिया, बांसली बजाते है।
10. कथौड़ी जनजाति के लोक वाद्य इनके वाद्य यंत्रों में गोरिडिया एवं थालीसर मुख्य है।

कंजर जनजाति

कंजर एक घुमक्कड कबीला है जो सम्पूर्ण उत्तर भारत की ग्राम्य और नागरिक जनसंख्या में छितराया हुआ है। ये सम्भवतः द्रविड़ मूल के है। 'कंजर' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत 'काननचर' से हुई भी बताई जाती है। एक किवदंती के अनुसार कंजर दिव्य पूर्वज मान गुरू की संतान है। मान अपनी पत्नी नथिया कंजरिन के साथ जंगल में रहता था। कंजर मुख्यतः कोटा, बूंदी, बारां, झालावाड़ और उदयपुर आदि जिलों में पाये जाते है। कंजर जनजाति में मुखिया को पटेल कहा जाता है। इस जनजाति में चौथमाता एवं हनुमानजी को आराध्य देव माना जाता है। हाकम राजा का प्याला कंजर लोग हाकम राजा का प्याला पीकर कभी झूठ नहीं बोलते है। अतः किसी मामले की सफाई जानने हेतु लोग हाकम राजा के प्याले की कसम खाते है।

कंजर जाति की कुलदेवी जोगणियां माता है। कंजर महिलाएं नाचने–गाने में कुशल होती है। इनका चकरी नृत्य प्रसिद्ध है। इनका प्रमुख वाद्य ढोलक एवं मंजीरा है। कंजरों में व्यस्क विवाह का प्रचलन है। विवाह वधु मूल्य देकर होता है। रकम का भुगतान 2 किश्तों में होता है। पेशेवर नामधारी होने पर भी कंजरों ने किसी व्यवसाय विशेष को नहीं अपनाया। कुछ समय पूर्व तक ये यजमानी करते थे और गांव वालों का मनोरंजन करने के बदले धन और मवेशियों के रूप में वार्षिक दान पाते थे। कुछ कंजर स्त्रियां भीख मांगने का कार्य भी करती है। किन्तु वर्तमान में कंजर जनजाति के लोग अपने परम्परागत धन्धों को छोड़कर आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक व्यवसायों को अपना रहे है। समय के साथ–साथ इनकी वेशभूषा भी बदल रही है। खान–पान में ये मांसाहार का अधिक प्रयोग करते है।

कंजरों की कबीली पंचायत शक्तिशाली और सर्वमान्य सभा है। सभ्य समाज की दृष्टि से पेशेवर अपराधी माने जाने वाले कंजरों में भी कबीली नियमों के उल्लंघन की कड़ी सजा मिलती है। अपराध स्वीकृति के निराले और यातनापूर्ण ढंग अपनाएं जाते है। कंजर अपने देवी देवताओं के साथ हिन्दू देवी देवताओं की भी मनौती करते है।

सांसी जनजाति –

सांसी एक खानाबदोश आपराधिक जनजाति है, जो भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र राजपुताना में केन्द्रित रही है। यह जनजाति अधिकांशतः राजस्थान के भरतपुर जिले में निवास करती है। सांसी लोग राजपूतों से अपनी वंशोत्पत्ति का दावा करते है, लेकिन लोककथा के अनुसार इनके पूर्वज बेड़िया थे जो यह एक आपराधिक जनजाति है। एक अन्य मत के अनुसार सांसी जनजाति की उत्पत्ति 'सांसमल' नामक व्यक्ति से मानी जाती है। जीवन यापन के लिए पशुओं की चोरी तथा अन्य छोटे–छोटे अपराधों पर निर्भर रहने वाले सांसियों का उल्लेख अपराधी जनजाति के रूप में होता है। इस जाति के लोग खानाबदोश जीवन व्यतीत करते है। छोटी–छोटी हस्तशिल्प निर्माण से भी आजीविका चलाते है। कुकड़ी की रस्म के तहत सांसी जनजाति की युवती को विवाहोपरान्त अपनी चारित्रिक पवित्रता की परीक्षा देनी होती है। इस जनजाति में नारियल के गोले के आदान–प्रदान से सगाई की रस्म पूरी होती है। सांसी जनजाति भाखर बावजी को अपना आराध्यदेव मानती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सैनी, एस.के. (2012) ''राजस्थान के आदिवासी'' युनिक ट्रेडर्स जयपुर, पृ.सं. 15–16
2. दयाल, एम. (1968) ''द चेंजिंग पैटनर्स ऑफ इण्डिया'' इन्टरनेशनल ट्रेडर्स इकोनॉमिक ज्योग्राफी वॉल्युम 44, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर पृ.सं. 240–246
3. दोसी, शम्भुलाल/ व्यास, नरेन्द्र (1992) ''राजस्थान की अनुसूचित जनजातियां'' हिमांशु पब्लिकेशन्स उदयपुर, पृ.सं. 80–86
4. उत्प्रेति, हरीशचन्द्र, (1970) ''भारतीय जनजातियां'' सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केन्द्र, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर, पृ.सं. 109–114
5. व्यास, गोपाल (1989) ''मेवाड़ का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन'' (18वीं व 19वीं शताब्दी) राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ.सं. 20–41

युगान्तर अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
खंड–**10** अंक–**42** वर्ष–**2021** (सितम्बर 2021) आईएसएसएनः **2320–2467** आईएपफः **5.4**

देशज भील संस्कृति पर वैश्वीकरण का प्रभाव

डा. लोकेश पारगी
प्राचार्य
श्रीयोगेश्वर स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सज्जनगढ़ जिला बांसवाड़ा

वर्तमान युग वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण व उत्तर आधुनिकता का युग है। इस युग में विश्व की सभी संस्कृतियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में आ रही है। एक–दूसरी संस्कृतियों से प्रभावित हो रही है। जहाँ विश्व के सभी देशों में भूमण्डलीकरण प्रभावी हो रहा है, वहीं भारत में भी 1991 से दस्तक दी है और हर वर्ग, समाज एवं संस्कृति को प्रभावित किया है। आदिवासी भील संस्कृति भी भूमण्डलीकरण से प्रभावित हो रही है।

आदिवासी भील संस्कृति वर्तमान दौर में सवंमित हा रही है। भारतीय इतिहास की सदियों पुरानी आदिवासी एवं कृषक सांस्कृतिक परम्पराओं का मिला –जुला स्वरुप दक्षिणी राजस्थान के भीलों में देखा जा सकता है पर भील जनजाति आज ऐसे मोड पर खड़ी है जो सामाजिक गतिशिलता की ओर अग्रसर है। इस समाज में पिछले दो–तीन दशको से बहुत बड़ा परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है। संचार,आवागमन, शहरीकरण, आधुनिकीकरण, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण, शिक्षा, योजनाबद्ध विकास कार्यक्रम, औद्योगिकरण एवं वैश्वीकरण ने इनके जीवन में आमूल–चूल परिवर्तन के अवसर पर उपस्थित किये है।

आज भारत में ही नही बल्कि पूरे विश्व में उदारीकरण, बाजार अर्थव्यवस्था, आर्थिक सुधार तथा भूमण्डलीकरण के नाम पर एक नई पूंजीवाद, साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी विश्व व्यवस्था का अभियान चल रहा है। भूमण्डलीकरण वर्तमान समय के व्यापारिक माहौल की ऐसी अवधारणा है जो पूरे विश्व को एक मंडल, एक केन्द्र बनाने की बात करती है। आज भूमण्डलीकरण प्रत्येक क्षेत्र का मुख्य विषय बन गया है क्योंकि इसने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है।

भूमण्डलीकरण '' वसुधैव कुटूम्बकम'' की अन्तःप्रेरणा से अनुप्रेरित नही है बल्कि बाजार की बेलगाम शक्तियों के सहारे पश्चिम के प्रभुत्ववादी मंसूबे को ही पुरा करने की एक चतुर प्रक्रिया है। इसने अर्थव्यवस्था , राजनीजि, तकनीक, संस्कृति, शिक्षा हर क्षेत्र को व्यापक रुप से अपनी चपेट में ले लिया है। आज भारत में ही नही बल्कि पूरे विश्व में भूमण्डलीकरण के नाम पर एक नई पूंजीवादी, साम्राज्यवादी, विश्व व्यवस्था का अभियान चल रहा है। किसी वस्तु, सेवा, विचार, पद्धति अथवा सिद्धान्त का विश्वव्यापी बनाना ही उस वस्तु, सेवा, विचार, पद्धति अथवा सिद्धान्त का वैश्वीकरण कहलाता है।

यदि हम अवलोकन करे तो पाते है कि बाजार की नीतियां सभी स्थानो पर लागु होती है चाहे देशज लोग ही क्यों न हों। भूमण्डलीकरण ने भील संस्कति के रीति–रिवाज, प्रथाओं , कानुनों, नियमों, खान–पान मूल्य विश्वास एवं लौकाचार आदि को प्रभावित किया है। नवीन संचार, यातायात एवं औद्योगिकरण के परिणामस्वरुप आधुनिक समय में जनजातियों की सामाजिक व सांस्कृति स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए है। ईसाईयों के सम्पर्क के कारण इनमें, परिवार , विवाह–गौत्र व नातेदारी की व्यवस्था में भी परिवर्तन हो रहे हैं। सामाजिक स्तरीकरण में भी परिवर्तन हुए हैं। पहले इनमें स्तरीकरण प्रस्थिति–प्रदत था। अब शिक्षा, योग्यता, धनार्जन, व राजनैतिक स्थिति आदि के आधार पर व्यक्ति की स्थिति समाज में उत्पन्न होने लगी है। औद्योगिकरण व आधुनिकीकरण ने जनजातियों के आर्थिक जीवन को भी प्रभावित किया है। आजकल कृषि के क्षेत्र में भी यंत्र, खाद, बीज आदि का प्रयोग हो रहा है।

भील संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर वैश्वीकरण का प्रभावः–

वैश्वीकरण के दौर में जनजातीय जीवन शैली, सामाजिक, आर्थिक, राजतीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक एवं चिकित्सा व्यवस्थाएं परिवर्तन हो रही है। वैश्वीकरण ने भील जनजाति पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला है। आज यह समाज शहरी चकाचौंध एवं तड़क– भड़क के प्रभाव से तथा आजीविका की तलाश में शहरों की और पलायन करने लगा है। आज वे स्वंय की संस्कृति ,लोकगीत,प्रथा, परम्परा, रीति–रिवाज, कानून,

ललितकला, नृत्य संगीत कला के साथ –साथ नवीन संस्कृति को अपना रहे है, इससे उनकी संस्कृति मिली–जुली संस्कृति का रुप धारण कर रही है। बाजार शक्तिशाली हो गये है। बाजार की सीमाएं बढ़ गई है। आज बाजार के सूदूर गांवों में भी **पेप्सी, कोका –कोला, थम्सअप का मिलना, बॉलीवुड की फिल्में देखना। आज सामाजिक व्यव्यथा में भी कम्प्यूटर, इन्टरनेट, मोबाईल, रहन–सहन, खान–पान आदि का प्रभाव देखने को मिलता है।** सांस्कृतिक क्षेत्र में भी जनजाति के परम्परागत **लोकगीत, लोकनृत्य साप्ताहिक हाट, पारम्परिक वेशभूषा में बदलाव में वस्तुतः स्थानीय समाज में पहचान का संकट खड़ा कर दिया है।**

वैश्वीकरण और पाश्चात्यीकरण से सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में परिवर्तन हुआ है। ग्लोबल विलेज के नाम पर संस्कृति को छिन्न–भिन्न करने की कोशिश हो रही है। भारतीय समाज के सभी प्रतिमान परिवर्तन के दौर से गुजर रहे है। **आधुनिक परिवर्तनों ने लिव इन रिलेनशिप, सैरोगेटमदर, समलैंगिक विवाह** जैसी अवधारणाएं विकसित की जिन्होने बिना विवाह किये स्वैच्छा से निर्मित एकल अभिभावक परिवार प्रस्तुत किया जो परिवार का गैर संगठनात्मक स्वरुप है।

उपसंहारः– अब एलुमिनियम और जर्मन सिल्वर के बर्तन गांव के करीब परिवारों में बहुत पंसद किये जाने लगे है। चाय का काफी प्रचलन हो गया है। शकुन, विचार, संरक्षात्मक जादूमंत्र और तंत्र का उपयोग बीमारी और कठिनाई को भगाने के लिये अभी भी होने लगा है।

जड़ी–बूटीयों को बुखार या अन्य आम रोगों में सेवन करने की पुरानी परम्परा जीवित है किन्तु जब बीमारी गंभीर रुप धारण कर लेती है तो रोगी को शहर के अस्पताल में भर्ती करा दिया जाता है। कुछ दशकों पहले इंजेक्शन से जितना डरा जाता था उतना ही आज इनकी मांग बढ़ रही है क्योंकि यह माना जाता है कि उनसे सभी प्रकार के रोगों में तुरन्त और निश्चित लाभ पहुंचता है।

युवा व्यक्तियों में जिन्होने शिक्षा पाई है या जिनका शहरों से सम्पर्क है, शहर जाने की इच्छा की अभिव्यक्ति होने लगी है। जाति पारंपरिक धर्म का एक अंग और उसी से अनुशासित बनी हुई है, फिर भी इनके व्यावसायिक स्वरुप में अन्तर आया है। अब लोग मजुदरी के साथ–साथ नये व्यवसाय अपनाने लगे है। नये सामाजिक–आर्थिक कारकों के प्रभाव स्वरुप पारिवारिक बंधन कमजोर पड़े है। संस्कारों –विशेषकर विवाह और मृत्यु भोजों पद दिखावे का व्यय बहुत बढ़ गया है। दहेज की मांगे बढ़ रही है गहने कपड़े के साथ–साथ अब टी.वी. स्कूटर आदि भी दहेज के अंग बनते जा रहे है। सामुहिकता के क्षेत्र सिकुड़ते जा रहें है।, वैश्वीकरण व भूमण्डलीकरण के कारण सामूहिक भावना का ह्रास हो रहा है नये परिवेश में यह शायद अनिवार्य है। कमी सिर्फ यह है कि सामुहिकता के नये आधार विकसित नही हो रहे है इनके अभाव में समाज को स्वच्छंद और नैतिकता विहीन व्यक्ति केन्द्रिकता के दुष्परिणाम भुगतने पड़ सकते है।

सन्दर्भ ग्रंथः–

1. टी.बी.नायक (1956): द भील्स– ए स्टडी, भारतीय आदिम जाति संघ, दिल्ली पृ. 11
2. नरेन्द्र व्यास (1979): भील सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में, माणिक्यलाल वर्मा आदिम जाति शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर, राज. पृ. 10
3. डा.शम्भुलाल दोसी (1992): राजस्थान की अनुसूचित जनजातियाँ , हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर पृ. 1 से 22, 42 से 51
4. डा. नीरजा भट्ट (2007): 18वीं , 19 वीं शताब्दी में राजस्थान का भील समाज, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर पृ. 1 से 18
5. डा. अजयसिंह राठौड़, (1994) : भील जनजाति शिक्षा और आधुनिकरण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर पृ. 22 से 30
6. काबरा, कमल नयन– भूमण्डलीकरण, विचार नीतियाँ और विकल्प
7. सिन्हा, सच्चिदान्द – भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ।

पर्यावरण से अतः सम्बंध

प्रो० – मधु सिंगला
अग्रवाल महाविद्यालय,
बल्लभगढ़ ,फरीदाबाद

ईश्वर ने निर्मल और स्वच्छ प्रकृति को बनाया और उस प्रकृति की निर्मलता और स्वच्छता को जीवंत रखने के लिए मानव को बनाया। अतः मानव और प्रकृति में संबंध कुछ ऐसा हो गया कि वह एक दूसरे के पूरक हो गए। मानव प्रकृति का अविभाज्य अंग है। सहज अनुराग का भाव तथा प्रकृति संरक्षण की बहती अजस्त्र धारा भारतीय संस्कृति है। प्रकृति अपनी असंख्य खूबियों द्वारा मानव को आकर्षित करती रही है। मानव सदैव ही प्रकृति के प्रति जिज्ञासु प्रवृत्ति का रहा है। ईश्वर ने मानव को वह शक्ति प्रदान की जिसके द्वारा उसने पर्यावरण को समझा, जाना और समय अनुसार बौद्धिक विकास होने पर तकनीकी क्रियाओं को सीख कर पर्यावरण में भौतिक परिवर्तन करने में सक्षम हो गया। पर्यावरण आखिर है क्या? सामान्य रूप से कहा जाए तो हमारे चारों ओर का वातावरण पर्यावरण कहलाता है। एक ऐसा वातावरण जो भूमि, जल, आकाश, वायु, और अग्नि इन पंच तत्वों से निर्मित है। पंच तत्वों द्वारा सूजित वातावरण मानव की पांच ज्ञानेंद्रियों व पांच कर्मेंद्रियों को प्रभावित करती है। जिस प्रकार माता का स्नेहमयी आंचल रूपी आवरण संतान को सुरक्षा प्रदान करता है उसी प्रकार प्राकृतिक पर्यावरण मानव को सहज सुरक्षा प्रदान करता है। प्राचीन काल के मनीषियों ने संपूर्ण प्रकृति को ही ब्रह्म माना है। योगी, मुनि जन और तपस्वी ऋषि इस पर्यावरण की रक्षा करने के लिए यज्ञ हवन इत्यादि करके वातावरण को शुद्ध रखते थे। ष्भारतीय संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है। सरिताओं को जीवनदायिनी कहा गया है,कदाचित इसी नाते आदि संस्कृतियाँ सरिताओं के किनारे उपजी और बसी और वही से विस्तार पाती गई। वर्जनाहीन समाज और निरंतर पतनोन्मुखी जीवन शैली में भले ही मूल्य बदल गए हो पर हमारी पुरातन संस्कृति में सरिताओं, तालाबों, पोखरों मे मल मूत्र विसर्जन की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।[1] पर्यावरण को दो भागों में विभक्त करके उसके स्वरूप को तथा मानव के साथ उसके अंतर संबंधों को जाना जा सकता है। पहला वर्ग है जिसे प्राकृतिक या भौतिक पर्यावरण कहते हैं और दूसरा मानव निर्मित अथवा सांस्कृतिक पर्यावरण प्रकृति में स्वतः होने वाली गतिविधियां जैसे ज्वालामुखी का फटना, सूर्य की तपन, भूमि की गति, वायु और जल की गति, जीव का जन्म और मृत्यु यह सभी गतिविधियां सहज है जो प्रत्यक्ष रूप से मानव को प्रभावित करती हैं। प्राकृतिक पर्यावरण वह पर्यावरण हैं जो मानव निर्मित नहीं है परंतु मानव की क्रियाओं और उसके जीवन की संपूर्ण गतिविधियों को प्रभावित करती है। दूसरे वर्ग के अनुसार सांस्कृतिक पर्यावरण वह है जिसने मानव ने पर्यावरण का समुचित ज्ञान अर्जित कर अपनी सुविधा अनुसार तकनीक द्वारा पर्यावरण को परिवर्तित किया। अनेकानेक गलतियों द्वारा या कहें की भूल में सुधार करके प्रयोग करके पर्यावरण से संबंधित ज्ञान को मानव अत्यधिक समृद्ध बनाता चला गया और ज्ञान की पराकाष्ठा विज्ञान का उसे रूप दे दिया। मानव द्वारा सृजित या सांस्कृतिक पर्यावरण में तकनीकी शक्ति व अनेक प्रकार के तत्व समाहित होते हैं। पिछले एक शताब्दी के दौरान पर्यावरण को नजरअंदाज करके मानव ने आर्थिक ,भौतिक व सामाजिक जीवन की प्रगति के लिए अंधाधुंध कदम उठाए और जब ठोकर लगी तो देखा जनसंख्या में बेहिसाब वृद्धि, जल, वायु, पृथ्वी और ध्वनि का प्रदूषित रूप, वन्य जीवन का घटना, और मानव ने स्वयं के जीवन को कब–कब में घटा दिया उसे स्वयं भी पता ना चला। विज्ञान और धर्म के अनुसार प्रकृति सजीव है तो स्पष्ट है कि सजीवता को कष्ट पहुंचा कर मानव ने अपनी नैतिकता को खो दिया। "पावकः न सरस्वती वाजविभाजिनिवती यज्ञ वश्टु धियावसुः।" वैदिक ऋषियों ने विद्या और बुद्धि की देवी सरस्वती को सर्वोपरि व पवित्रता के दृष्टिकोण से सर्वप्रथम स्वीकार किया है। "प्राचीन संस्कृति का मूल आधार प्रकृति के साथ तारतम्य रखना था। यह तारतम्य नष्ट करने की पहल मानव ने की। दुर्भाग्य से यह सब विज्ञान के जरिए हुआ, विज्ञान ने हमें आत्मविश्वास दिया, शक्ति दी और साथ में दी अपनी अदम्य इच्छाओं को पूरा करने की लालसा। हमें अधिक और अधिक चाहिए था, सब कुछ बड़ा। हमने बड़े–बड़ेकारखाने लगाए। इन बड़े कारखानों ने बड़ा प्रदूषण फैलाया और उस बड़े प्रदूषण ने और महाविनाश

को जन्म दिया। इस महाविनाश को रोकने के लिए फिर नए शोध हुए, फिर नई ताकत प्राप्त हुई और फिर उत्पन्न हुई उससे आगे की एक नई और कठिन चुनौती।"[2] मनुष्य का हित केवल पर्यावरण से समरसता बनाए रखने में है ।पर्यावरण से मानव का संबंध दूषित करने में आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी का बड़ा हाथ है। इसके द्वारा प्रकृति का दोहन और मनुष्य स्वयं का भी शोषण करता है, चाहे अनजाने में ही सही। पर्यावरण और मानव का सह अस्तित्व संतुलित व शांत रहे इसके लिए जो भी तकनीकी विकास हैं उसमें मानव केंद्र में होना चाहिए अर्थात उत्पादन यंत्र निरपेक्ष हों। मशीनें मानव का स्थान न लेकर केवल कार्य करने की क्षमता को विकसित करें। मशीनें, यंत्र, उपकरण, औजार सब इस प्रकार का हो जिसमें मानव के व्यक्तित्व में प्रेरणा का संचार हो ना कि कोई दुष्प्रभाव। प्रोफेसर इ.एफ.शुमाखर के अनुसार" अपनी वैज्ञानिक व तकनीकी शक्ति के मुखरित होने के उत्साह में आधुनिक मानव ने उत्पादन की ऐसी प्रणाली का निर्माण कर लिया है जो प्रकृ ति के साथ अनाचार करती है और ऐसे समाज की रचना कर ली है जो मनुष्य को विकृत कर देती है।[3]

पर्यावरण का संबंध केवल प्रदूषण से जोड़ना ठीक नहीं है बल्कि प्राकृतिक तत्व और संसाधनों में संतुलन बैठाते हुए उसकी रक्षा करने से भी है। भारतीय दर्शन में सहज जीवन पद्धति के द्वारा प्रकृति के प्रति विनीत भाव निहित है। गहराई से यदि विचार किया जाए तो मानव शरीर लघु प्रकृति के समान हैं और वैश्विक ब्रह्म प्रकृति से सौहार्दपूर्ण संबंधों के लिए आवश्यक है कि सामंजस्यता का ध्यान रखा जाए। पूरा ब्रह्मांड परिवार के समान है तो इसमें किसी का अस्तित्व अलग हो नहीं सकता। सामंजस्यता, प्राकृतिक संतुलन, पर्यावरण के साथ घनिष्ठ अंतर्संबंध की अनिवार्य शर्त यही है कि प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत के अनुसार प्रयोग हो और इस प्रकार से हो कि पुनर्चक्रण द्वारा उसकी आपूर्ति की जा सके। यह पर्यावरण की सुरक्षा का मूल मंत्र माना जा सकता है। आधुनिक मानव की विज्ञान पर आधारित सोच यदि प्रकृति से जीतने या उसका दोहन करने से है तो यह ऐसे ही मूर्खतापूर्ण हैं जैसे हाथों से हृदय को जीतने की कोरी कल्पना का साकार होना जो सर्वथा असंभव है। "प्रकृति इस विश्व का शरीर पक्ष और चेतना तत्व (पुरुष) उसका आत्म पक्ष। इस अर्थ में हम सभी प्राणियों का (चाहे नर हो या मादा) का शरीर प्रकृति है। उस में निवास करने वाला चेतन तत्व (आत्मा) संचालक की भूमिका में रहता है। चेतन युक्त अस्तित्व को सजीव कहते हैं और शेष को निर्जीव। पेड़ पौधों से लेकर सूक्ष्म अति सूक्ष्म जीवाणु तक सजीव ही है। हम जब तक अपने सापेक्ष विचार करते हैं, तो प्रकृति शब्द का प्रयोग दार्शनिक अर्थ से थोड़ा हटकर,मानवेत्तर समस्त सजीव निर्जीव अस्तित्व के लिए करते हैं। प्रकृति का यही आज अर्थ है जिसके लिए पर्यावरण शब्द का भी प्रयोग होता है।" मानव और पर्यावरण का अंतर संबंध अन्योन्याश्रित है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मानव के दायित्व विभिन्न स्तरों व क्षेत्रों में होते हैं। जिसकी पूर्ति के लिए वह पर्यावरण को प्रभावित करता है। आज का आधुनिक मानव विज्ञान और तकनीकी से जुड़ा है या यूं कहें कि इसके द्वारा निर्मित वह स्वयं विज्ञान पर आश्रित हो चुका है। इसलिए मन मुताबिक प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करता है। पर्यावरण और मानव की बीच की इस क्रिया को अंतः प्रक्रिया कह सकते हैं। मानव की संस्कृति, स्वयं की मानसिक धारणाएं, विज्ञान, और आधुनिक तकनीक इनके आधार पर मानव सांस्कृतिक परिवेश का सृजन करता है, पहचान बनाता है और उसे श्रेष्ठ बनाने के लिए प्रयासरत रहता है। तकनीकी संसाधनों का बेधड़क प्रयोग कर उसे समाप्ति के कगार पर पहुंचा देता है। वह अन्य समाज पर आश्रित हो परतंत्रता के भाव को झेलता है। वैश्विक व राष्ट्रीय स्तर पर ही बिगड़ते संबंधों के कारण पर्यावरण को नष्ट करने पर आमादा मानव दानव बन जाता है। वैज्ञानिक उन्नति औद्योगिक प्रगति नई–नई बीमारियों को जन्म देकर मानव की दुर्गति करती है। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण ,ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण मानव के पंचकोशों अन्नमयकोश, प्राणमयकोश, मनोमयकोश, विज्ञानमनयकोश और आनंदमयकोश मे रिक्तता को भर देती है। असमय मौसम परिवर्तन, अम्लीय वर्षा ,नई नई बीमारियां मानव को मानसिक व शारीरिक रूप से अक्षम कर देती हैं। आधुनिक मानव सभ्यता का एक छोटा सा वर्ग जो आज भी प्रकृति के प्रति समर्पित है वह पिछड़ा हुआ कहलाता है। ग्रामीण क्षेत्रों के वे लोग जो आज भी खुले आसमान के नीचे सोना, धरती पर बैठकर खाना पसंद करते हैं व पिछड़े कहलाते हैं जबकि उनका पर्यावरण से संबंध कह सकते हैं कि सबसे ज्यादा निकट का रहता है। प्रकृति से कुछ छेड़– छाड़ कर ,कभी उसे नजरअंदाज कर ऐसा समाज या देश अर्ध विकसित के स्तर पर अपने को समझता है और गगनचुंबी इमारतों में विशाल उद्योगों के बीच कृत्रिम जीवन यापन करता समाज स्वयं को विकसित समझता है। प्रकृति से नाता

तोड़कर अल्पकालिक सुख प्राप्ति की चाह में अपने जीवन के सही अर्थ को वह भूल जाता है, प्रकृति से दुर्व्यवहार करता है और एक दिन प्रकृति के रौद्र रूप को देखता है। वर्तमान की महामारी हो या इससे पहले हुई महामारी संकेत है कि मानव ने प्रकृति को असहनीय कष्ट पहुंचाया है। औद्योगिकीकरण के कारण मानव संवेदना हीन होकर स्वयं यांत्रिक प्रवृत्ति का हो गया हैद्य भौतिक संसाधनों की कमी से मानव स्वयं को कुंठा ग्रस्त,क्षोभ पूर्ण स्थिति में पाता है

इसलिए मानसिक अवसाद या विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त होता है। मानव के लिए पर्यावरण की निश्चित स्थिति है और उस स्थिति में परिवर्तन सकारात्मक रूप में ना होकर नकारात्मक रूप में हो तो विकृतियां उत्पन्न होना स्वभाविक है। मनुष्य के क्रमिक विकास में पेड़– पौधे, पर्वत, हरियाली, वर्षा ऋतु परिवर्तन अर्थात पर्यावरण का अत्यधिक महत्व है। जनसंख्या बढ़ोतरी के कारण मानव ने जंगलों को काट दिया। "पेड़ काटना अपने आप में एक बड़ी दुर्घटना है। एक पेड़ अपने 50 वर्ष के जीवन में 5.3 लाख रुपए की ऑक्सीजन 6.4 लाख के मूल्य की उपजाऊ मिट्टी कटाव संरक्षण करता है तथा 0.5 लाख मूल्य का वायु प्रदूषण का संरक्षण तथा 5.6 लाख का पशु पक्षियों को आवास देता है। इसके अतिरिक्त फल –फूल और लकड़ी अलग से देता है। "भारतीय संस्कृति मानव को स्वाभाविक रूप से पर्यावरण के प्रति सचेत रहने व संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रेरित करती है। यह सत्य है कि आधुनिकता की चकाचौंध और पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण ने मानव को अपनी संस्कृति से विमुख कर दिया। मानव प्रकृति का अंश है और पर्यावरण उसके जीवन का आधार। यह संस्कार ईश्वर द्वारा प्रदत्त है इन्हें जानबूझकर आरोपित नहीं किया जा सकता। ऐसा भी नहीं है कि प्राचीन समय में कभी प्रकृति संबंधी समस्याएं नहीं हुई परंतु स्वास्थ्य जीवन और स्वस्थ समाज के लिए ऋषि, मुनि, तपस्वी प्रदूषण से बचने के लिए सदैव पर्वतों और नदियों के संगम को चुनकर पर्यावरण से सदा मित्रवत व्यवहार रखते थे।" उपह्वर इत्युंऽपहे। गिरीणाम्। सङ्गम इतिं समुऽघगमे। च। नदीनाम् धिया। विप्रः अजायत"[6] आज भी देखा जाए तो भारतीय समाज के साधु– संत समय–समय पर कुंभ स्नान, मौनी अमावस स्नान, ध्यान व तपस्या के लिए पर्वतों की श्रृंखलाओं को अपना निवास स्थान बनाते हैं। पर्यावरण सदैव मानव का शुभ आकांक्षी रहा है। बाहरी पर्यावरण ही केवल मानव पर प्रभाव नहीं डालता अपितु परिवार का आंतरिक वातावरण भी मानव को प्रभावित करता है। कलह, अशांति, और अंतर्द्वद से ग्रसित मानव में शारीरिक व मानसिक व्याधियों को उत्पन्न करता है।" शं ते अग्निरू सहाद्धिरस्तु शं सोमरू सहौषधीभिरू। एवाहं त्वां क्षेत्रियान्निरृत्या जामिशंसाददद्भुहो मुंज्चामि वरुणस्य पाशांत। अंनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि शिवे ते द्यावांपृथिवी उभे स्ताम्।[7]

यह मंत्र पारिवारिक पर्यावरण को इंगित करता है। परिवार में रहने वाले सदस्य एक दूसरे के प्रति स्नेहिल माधुर्यपूर्ण वशांतिपूर्ण व्यवहार रखें तो प्रसन्नता की पराकाष्ठा आनंद के रूप में शासन करती है। गंभीर रोग से ग्रस्त मानव को औषधि भी वह असर नहीं करती जो उस समय प्रेम में समर्पण का भाव असर करता है और रोगी रोग मुक्त होने पर भी अच्छे पर्यावरण में स्वयं को स्वस्थ व इच्छाशक्ति से पूर्ण पाता है। प्राकृतिक अर्थात स्वाभाविक वातावरण से यदि मानव भी सहज प्रेम करे तो सांस्कृतिक पर्यावरण भी स्वच्छ रह सकता है। पर्यावरण केवल पेड़– पौधे, पशु–पक्षी नदी –सागर, पर्वत– झरने, घाटी और मौसम नहीं होते बल्कि परिवार का प्रत्येक रिश्ता माता–पिता, भाई–बहन, दादा–दादी या अन्य प्रेम से परिपूर्ण हो वह भी वातावरण हैद्य वह भी असली पर्यावरण है जिसकी आज मानव को सख्त आवश्यकता है। नैतिकता के घटते मूल्य" आधुनिक युग की त्रासदी है कि हमने कृष्ण की सी आत्मीयता मधुरता सौंदर्य भाव एवं समर्पण की भावना खो दी। इसलिए तनावों, अवसादों से घिरे हैं हम। स्वार्थी मनोवृति के कारण देने का भाव लुप्त हो गया है। निरंतर कर्मशील रहकर ही कृष्ण को अर्जुन को गीता का कर्म योग सिखाने का अधिकार मिला। कृष्ण जहां रहे जिस के संपर्क में रहे उसे सर्वस्व दे डाला। संपूर्ण को बांटते –बांटते संपूर्ण हो जाते हैं। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाविष्यते पूर्ण में से पूर्ण लेकर पूर्ण ही शेष बचता हैश। प्रकृति के संरक्षण के लिए सबको यही सिद्धांत अपनाना होगा क्योंकि पर्यावरण से अंतर्संबंध ईश्वर से संबंध बनाने जैसा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. शुकदेव प्रसाद, पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 27
2. मंथन, अंक 15, वर्ष 2017, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की, पृष्ठ संख्या 10
3. शुकदेव प्रसाद, पर्यावरण और हम, प्रभात प्रकाशन 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 42
4. अरुण प्रभा, संयुक्त अंक 9–10, ISSN-2349-6444, पृष्ठ संख्या–35
5. डॉक्टर सुजाता बिष्ट, पर्यावरण प्रदूषण और इक्कीसवीं सदी, पृष्ठ संख्या–34
6. यजुर्वेद, अध्याय 26, मंत्र 15
7. अथर्ववेद, कांड 2, सूक्त 10, मंत्र 2
8. डॉ प्रवेश सक्सेना, संस्कृत, संस्कृति और पर्यावरण, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 233

भारत में दलितों की उत्पत्ति और उनके उत्थान के प्रयास

डॉ. इशा शमा
एसोसिएट प्रोफेसर,
एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद

संजीव कुमार सिंह
शोधार्थी, इतिहास विभाग
एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद

सारांश :–

दलित वर्ग स1दियों से शोषित रहा है। सच तो यह है कि वर्तमान में भी उन्हें भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि इस तरह की व्यवस्था जिसमें एक शोषक वर्ग व दूसरा शोषित वर्ग केवल भारत में ही रही है। अपितु विश्व के अन्य देशों में भी इस तरह की व्यवस्थाएँ रही हैं जैसे रोम वालों के अपने गुलाम होते थे, ब्रिटिश में उनके खिदमतगार थे व अमेरिका में हब्शी थे। लेकिन हाँ भारतीय व्यवस्था व अन्य व्यवस्था में एक अंतर था वो यह था कि भारतीय शोषणकारी व्यवस्था को धर्म से जोड़ दिया गया था या फिर ये कहें कि धर्म इसको जायज ठहराता था, इसलिए यह व्यवस्था सैकड़ों साल तक बनी रही। वर्तमान में भी दलितों को शोषण का शिकार होना पड़ता है। जबकि हम वर्तमान में 21वीं सदी में रह रहे हैं। अतः अगर हम समाज व देश का विकास चाहते हैं तो इन वर्गों को भी हमें बराबरी पर लाना होगा और दलितों को साथ लेकर चलना होगा तभी सच्चे अर्थों में "सबका साथ सबका विकास" का सरकार का नारा सही साबित होगा।

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है जिसका अर्थ तोड़ना है। टुकड़े करना अलग–थलग करना आदि से है। हिन्दी के शब्दकोष में दलित का अर्थ दलिद्दर, गया बीता और बहुत ही निम्न कोटि का कहा गया है।[1] संस्कृत हिंदी कोश में 'दलित' का अर्थ दलन किया हुआ, गिरा हुआ और अविकसित कहा गया है।[2]

दलित का अर्थ जिसका दलन हुआ हो मसला या रोंदा गया हो जो दबाया गया हो, कुचला गया हो अर्थात् जिसे पनपने और बढ़ने नहीं दिया गया हो और ध्वस्त या नष्ट किया गया हो अर्थात् दलित वर्ग समाज का वह निम्नवत वर्ग है जो उच्च वर्ग के लोगों के उत्पीडन के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन दशा में हो जैसे दास प्रथा, सामंतशाही व्यवस्था में कृषक और पूंजीवाद व्यवस्था में मजदूरी।[3] समाज में वह वर्ग जो सवर्णों के साथ उठ–बैठ नहीं सकता, खा–पी नहीं सकता अर्थात् प्रत्येक क्षेत्र में उपेक्षित किया जा रहा हो, उस दृष्टि से विपन्न लोगों को दलित मानते हैं। यह विचार दलित के अर्थ को सही ढंग से अभिव्यक्त नहीं कर सकता, क्योंकि हिन्दू समाज में जो ऊँच–नीच की व्यवस्था है, वह जाति के नाम पर है, अर्थ के नाम पर नहीं। अतः दलित हम उन्हें कहेंगे जो निम्न जाति वाली ऐसी जातियों में धकेल दिए हैं जिन्हें न सम्मान प्राप्त है और न ही कोई अधिकार, वही दलित है।

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था सामाजिक श्रेणियों में विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित है।[4] हमारे धार्मिक ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में पुरुष सूक्त में वर्णन आता है। ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय बाहू से, वैश्य जांघ से तथा शूद्र पैरों से पैदा हुए। यह विवरण एक कालंकरित ढंग से लिखा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्मा से सभी वर्गों की उत्पत्ति हुई। समस्त वर्ग समाज से स्तंभ का सदृश है। इसकी सहायता तथा कर्म से समाज आगे बढ़ता गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि–

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः
तस्य कर्तारमार्य मां विद्धयकर्ता रम व्ययम्।[5]

कर्म तथा गुणों को ध्यान में रखकर वर्णों का वर्गीकरण किया गया था। किन्तु यह भावना स्थायी न रह सकी। ऋग्वैदिक काल में भी यही परम्परा विद्यमान रही कि जो जिस कार्य में निपुण है उसे उस जाति का माना जाये लेकिन उत्तर वैदिक काल तक आते–आते स्थिति बदल गयी। अब कर्म के आधार पर जाति का बंटवारा हो गया जो जिस जाति का है वही कर्म करेगा जैसे– ब्राह्मण का कार्य पूजा–पाठ का, क्षत्रिय का देश की रक्षा और वैश्य का कार्य बाजार व्यवस्था का समाज में वर्ण जाति के रूप में परिणत हो गया। इतना होते हुए भी कर्म के अनुसार ही जाति में उपजातियाँ बनती गयी। शूद्र वर्ण की अनेक उप–जातियाँ

कर्म से सम्बन्धित होकर विकसित हुई। जाति व्यवस्था का आधार हमारा आदि काव्य भी रहा है, मनस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्मा का जन्म सोने के अण्डे से हुआ, उसका वर्णन करने के बाद मनु ने लिखा कि मानव सृष्टि की रचना के लिए ब्रह्मा ने अपने मुखसे ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उदर से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न किये।[6] महाभारत में शान्ति पर्व में भृगु ने लिखा है, जातियों में कोई अन्तर नहीं है। शुरू में ब्रह्मा ने विश्व की रचना की और सब लोग जन्म से ब्राह्मण थे। तत्पश्चात् अपने–अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न जातियों में बंट गये। जिन द्वविजों को इन्द्रियाँ सुख प्रिय थी, जो क्रोधी और हिंसक थे, रक्तिम वर्ण के थे तथा जिन्होंने अपने कर्तव्यों को त्याग दिया था, वे सब क्षत्रिय हुए। जिन द्वविजों ने अपना कर्तव्य छोड़कर गौपालन की वृत्ति अपना ली और खेतीवाड़ी के काम में गे तथा जिनका वर्ण पीत था, वे सब वैश्य कहलाये। जो द्वविज असत्य भाषण, दुष्टाचार में लिप्त रहते थे, लालची थे तथा सभी तरह के कुकर्म किया करते थे तथा जिनका रंग काला था वे शूद्र हो गये।[7] इस तरह हमारे आदि ग्रन्थों का विभाजन किया जिसका स्वरूप था कि जन्म से ही व्यक्ति महान होता है। अगर जन्म किसी ने शूद्र के घर में लिया है तो लाख मेधावी और योग्य होते हुए भी किसी काम के योग्य नहीं, वह ऊपर के तीन वर्णों की बड़े नियम और संयमपूर्वक सेवा करें। जबकि ऋग्वैदिक काल में ऐसा नहीं होता था। धार्मिक ग्रन्थों में जाति व्यवस्था की उत्पत्ति कस सजीव वर्णन नहीं मिलता, प्रत्युत्तर नमें तरह–तरह की अटकलबाजी है। कहीं तो रहस्यपूर्ण व्यवस्था दी गयी है, कहीं पौराणिक कल्पना का सहारा लिया गया और कहीं–कहीं केवल युक्तिपोषक वर्णन मिलता है किन्तु सर्वाधिक प्रचलित कहानी यही है जातियाँ पुरुष या ब्रह्मा के मुख, बाहू, जांघ और चरण से प्रादुर्भाव हुई हैं। इस विषय का सबसे प्राचीन उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सक्त में आया है। किन्तु जिस रूप में यह बात कही गयी है, उससे सन्देह होता है कि वह व्याख्या शायद रूपक मात्र है। पुराणों में मनु के 'मानस धर्मशास्त्र में वैदिक ग्रन्थों की यह रहस्यवाद रूपक शैली छोड़ दी गयी है और तथ्यों का वर्णन स्पष्ट कृत्यों में दिया गया है। अब प्रश्न उठता है जातियों की उत्पत्ति इतने विभिन्न विवरण को मिलते हैं। सम्भवतः इसके नियमों की परीक्षा करने पर पता चले कि जातियों का विधान किसी न्यायधिकृत देवता ने किया।[8] विधान बनाने वालों ने ऐसा लगता है कि स्वयं को एक अत्यन्त ऊँचे धरातल पर खड़ा कर सम्पूर्ण नियमों का निर्माण किया। क्योंकि बात कैसी भी क्यों न हो, उसका निराकरण जातियों के आधार पर ही किया जायेगा। भारत में ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है किन्तु धर्म ग्रन्थों में उसे 'भूदेव' भूमि का देवता कहा है, उसे विशेष अधिकार प्राप्त रहे हैं। यहाँ तक कि किसी की हत्या भी कर दे तो भी उसे मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता था।

सन् 1915 में पश्चिमी सभ्यता तथा आंग्ल शिक्षा का सम्पर्क भी सफलतापूर्वक अस्पृश्यता के प्राचीन विचारों को नहीं दबा सका। इसमें ग्रामीण विद्यालयों के अछूत वर्गों के लड़कों को उस परिचित दृश्य का भी संकेत मिलता है कि 'जहाँ लड़कों को प्रायः स्कूल के कमरों के अन्दर नहीं बैठाया जाता है। सन् 1923 में अंग्रेज सरकार ने अपना एक प्रस्ताव पारित किया कि किसी भी ऐसी सहायता प्राप्त संस्था को अनुदान नहीं दिया जायेगा जो उस समय तक दलित वर्ग के लड़कों के पृथकरण की प्रथा विशेषतः प्रेसिडेन्सी के तथा नगरपालिका के स्कूलों में दलित वर्ग के बालक बालिकाओं को ऊँची जाति के हिन्दुओं के बालकों के साथ कक्षाओं में नहीं बैठने दिया जाता है। अंग्रेज सरकार दलित वर्गों के सामने व्यवहार के अधिकर को क्रियान्वित कर रही थी, सरकार की सन् 1923 के अन्त तक की विधान पुस्तकों में यह कानून विद्यमान रहा, जिसके द्वारा गांव के दण्डकारी को यह अधिकार होता था कि किसी निम्न जाति के अपराधी को लकड़ी के शिकंजे में डालकर दण्ड दे सकते थे। सरकार ने सन् 1914 में कहा था कि इस अमानवीय प्रथा को बन्द कर दिया जायेगा। सन् 1925 में मद्रास विधान परिषद में एक विधेयक रखा गया था जिसके द्वारा समस्त सार्वजनिक सड़कों, गलियों या मार्गों को, जो किसी सार्वजनिक कार्यालयों, कुएं, तालाब या सार्वजनिक समागम स्थानों को ले जाती हो, दलित वर्ग सहित सभी वर्गों के लोगों के आवागमन के लिए खोल दिये।[9] आरम्भ में अब्राह्मण नेताओं ने अपने सदस्यों के लिए प्रशासकीय संस्थाओं तथा सार्वजनिक सेवाओं में विशेष प्रतिनिधित्व की आवश्यकता का सरकार पर जोर डाला। बहुत समय तक इन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया तथापि कोल्हापुर के महाराजा ने इस चीख पुकार को सुना उन्होंने इसको पूर्ण शक्ति के साथ प्रस्तुत किया तब श्री मान्टेग्यू सरकार के भावी रूप के सम्बन्ध में भारत की जनता तथा सरकार की राय लेने भारत आये श्री मान्टेग्यू सरकार के भावी रूप में सम्बन्ध में भारत की जनता तथा सरकार की राय लेने भारत आये श्री

मान्टेग्यू तथा लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा निर्मित संशोधित विधान में मिश्रित निर्वाचन क्षेत्रों के जरिये ब्राह्मणों का विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इन धारणाओं के अधीन बम्बई प्रेसीडेन्सी की समस्त हिन्दु जनता को तीन भागों में विभक्त किया गया। ब्राह्मण तथा उनसे मिलती जुलती जातियाँ, मराठा तथा अन्य जातियों के मध्यवर्ती वर्ग तथा पिछड़े वर्ग जिनमें अछूत भी सम्मिलित थे। सरकार ने वित्त विभाग के 17 सितम्बर, 1923 के प्रस्ताव में स्पष्ट रूप में निम्नतर सेवाओं में उन्नतिशील ब्राह्मण तथा अन्य वर्गों का प्रवेश उस समय तक के लिए बन्द कर दिया जब तक कि पिछड़े वर्गों तथा अछूतों को एक निश्चित अनुपात में एक स्थान प्राप्त न हो जाये। सरकार के इस दृढ़ निश्चिय के कारण ही कुछ जातियों का प्रतिनिधित्व प्रान्तीय सेवाओं में हो, सरकारी संस्थाओं के प्रमुख अपने अधीन रिक्त स्थानों के लिए आवेदन–पत्र माँगते समय आवेदनकर्ता के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वह अपनी जाति तथा उपजाति का उल्लेख करें। इस तरह अंग्रेज सरकार ने अछूतों के उत्थान के लिए कार्य किया।

संसार भर से गुलामी का नामोनिशान मिट गया लेकिन भारत में यह सामाजिक व आर्थिक रूप में जीवित है और यह आज भी भयानक शक्लों में प्रकट होती है। आर्य सभ्यता, वदिक संस्कृति तथा सनातन धर्म तक ही विचारधारा के अलग–अलग नाम हैं, इसका सारा का सारा साहित्य, क्या धार्मिक तथा क्या अन्य साहित्य सभी अछूतों के विरूद्ध आदेशों, प्रतिबन्धों और प्रेरणाओं से भरा पड़ा हे। वेद, पुराण, ब्राह्मण, ग्रन्थ पंचवंश ब्राह्मण, स्मृतियाँ, मनस्मृति, रामायण, महाभारत और भगवतगीता आदि धार्मिक हिन्दू ग्रन्थों में शूद्रों के विरूद्ध अमानुषिक फतवे दिये गये हैं। हिन्दू ऋषियों, आर्यों, मुनियों, साहित्यकारों ने जहाँ भी उनका बस चला। जी भरकर शूद्रों व अछूतों की निर्भहतना की है। धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित इस देश भावना, निन्दनीय प्रचार घृणा के परिणामस्वरूप भारत की जनसंख्या का हर पांचवा व्यक्ति अछूत घोषित कर दिया गया। वर्तमान विधान बनाने से पहले अछूतों को तीन वर्गों में बांटा गया है। एक वे जिनके साथ स्पर्श करना अधर्म था, दूसरा यह वग्र जिन्हें देखना तक पाप था व तीसरा वह वर्ग जिसकी परछाई पड़ना भी गुनाह समझा जाता था।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का दलित उत्थान में योगदान –

अछूतों पर हो रहे अत्याचारों को देखते हुए डॉ. अम्बेडकर ने इन वर्ग के लोगों को समाज में अच्छा स्थान दिलाने के लिए सन् 1923 में संघर्ष प्रारम्भ कर दिया। सन् 1923 में भारत में ईर्ष्या, घृणा और भेदभाव की ज्वालायें चारों ओर चल रही थीं। परन्तु बम्बई प्रान्त में तो विशेष उभार था, बम्बई प्रान्त के इतिहास में पहली बार विधान परिषद में श्री घोलप नाम के एक अछूत को मनोनीत किया गया। 04 अगस्त, 1923 को श्री ए.के. बोले की ओर से एक प्रस्ताव पेश किया गया जिसमें कहा गया "परिषद यह सिफारिश करती है कि ऐसे सभी सिंचाई साधन कुएं, धर्मशालाएं, स्कूल, कार्यालय और अस्पताल जो सरकारी सम्पत्ति से निर्मित किये गये हैं या जिसका प्रबन्ध सरकार द्वारा गठित बोर्ड द्वारा किया जाता है, अछूतों को प्रयोग करने की स्वतन्त्रता होगी। मार्च 1924 को अम्बेडकर ने प्रमुखतः समाज सुधार का काम आरम्भ किया। 09 मार्च, 1924 को उन्होंने दामोदर हाल बम्बई में एक विशाल सभा आमंत्रित की ताकि अछूतों की उन्नति के लिए एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जा सके। 20 जुलाई, 1924 को बहिष्कृत हितकारणी सभा स्थापित की गई यह सभा 1860 से एकट के अधीन रजिस्टर्ड भी करवाई गई।

इस सभा का कार्यक्षेत्र बम्बई (वर्तमान में मुम्बई) प्रान्त तक ही सीमित था। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे। दलित वर्गों में शिक्षा–प्रसार के लिए होस्टल खोलना या दूसरे योग्य ढंग और साधन अपनाना उद्योग और कृषि द्वारा दलित वर्ग की आर्थिक दशा उन्नत करना एवं सुधारना। दलित पिछड़े वर्गों में सभ्य जीवन प्रसार के लिए पुस्तकालय, सामाजिक केन्द्र और अध्ययन केन्द्र स्थापित करना। दलित वर्ग की शिकायतें पेश करना। अछूतों और पिछड़ों की दशा का अनुभव डॉ. भीमराव अम्बेडकर को सबसे अधिक था। अछूतों पर हो रहे अत्याचारों, अन्यायों और घृणापूर्ण व्यवहारों से वे भलीभांति परिचित थे, उन्होंने इस कठिनाईयों के वृक्ष का कटुफल स्वयं चखा था। इसीलिए उनकी आवाज में वेदना थी, एक कसक और तड़प थी गुलामों को यह दर्शा दो कि वह गुलाम हैं, फिर वह विद्रोह कर देगा यह नारा अम्बेडकर ने बुलन्द किया। जिससे दलित, पिछड़ों में जागृति आयी। अम्बेडकर ने उन्हें ललकारा, तुम्हारे मुर्दों की दयनीय दशा देखकर और

तुम्हारी हताश निराश आवाजें सुनकर मेरा ह्रदय फट जाता है। कितनी देर से तुम अत्याचारों की चक्की में पीसे जा रहे हो और फिर भी तुम्हें सहस सहीनता एवं आत्मविश्वास, शून्यता त्यागने का विचार नहीं आता। तुम लोग उत्पन्न होते ही समाप्त क्यों नहीं हो जाते? तुम अपने दयनीय घृणित और तिरस्कार पूर्ण जीवन से पृथ्वी का बोझ क्यों बढ़ाते हो यदि तुम नया जीवन नहीं ढाल सकते और अपनी दशा नहीं बदल सकते तो इससे मरना कहीं श्रेष्ठ है। वास्तव में भोजन, वस्त्र और आवास प्राप्त करना तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। यदि तुम सम्मान का जीवन जीना चाहते होतो तुम्हें आत्म सहायता पर जो सर्वश्रेष्ठ सहायता है विश्वास करना होगा। अम्बेडकर के इस प्रकार के भाषण ने निष्प्राणों में प्राण, साहस हीनों में साहस और जोश भर दिया। वर्ष 1925 में अछूतों की ओर से कई प्रकार के छोटे–छोटे विद्रोहात्मक कार्य किये गये। मार्च 1926 में श्री मुरगेसन नामक अछूत ने मद्रास के एक मन्दिर में प्रवेश किया, जिसमें अछूतों का प्रवेश बन्द था। उस अछूत को पहचान लिया उसे गिरफ्तार कर एक हिन्दू मन्दिर को अपवित्र करने का अपराध में दण्ड दिया गया। जनवरी 1927 में अछूतों ने कोरेगांव युद्ध के शहीदों की स्मृति में एक कान्फ्रेंस आमंत्रित की। इस कान्फ्रेंस को सम्बोधित करते हुए अम्बेडकर ने कहा कि सैकड़ों की संख्या में अछूतों ने अंग्रेजों के लिए युद्ध में भाग लिया परन्तु अंग्रेज अकृतज्ञ और कृतघ्न निकले क्योंकि उन्होंने सेना में अछूतों की भर्ती बन्द कर दी क्यों हिन्दू लोग अछूतों को नीच समझते हैं, अछूत अपनी आजीविका का कोई साधन नहीं अपना पाते। अम्बेडकर की ओर से स्वाभिमान की जगाई हुई ज्योति ने दलित वर्ग के अंधकार पूर्ण मन को ज्योतित कर दिया। उनमें भावनायें हिलोरे ले रही थी। अब वे अपने मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए व्यग्र हो उठे थे जिला कुबाला के दलित लोगों ने महाड़ नामक स्थान पर 19 से 20 मार्च, 1927 को एक विशाल कान्फ्रेंस करने का निर्णय लिया। लगातार कार्यकर्ता इसे सफल बनाने के लिए दिन रात मैदानों और पर्वतों में छाये रहे। उन्होंने कान्फ्रेंस का संदेश घर–घर पहुँचाया। परिणामस्वरूप दलित वर्ग के लोगों ने हजारों की संख्या में इस कान्फ्रेंस में भाग लिया। इसमें 15 से 70 वर्ष तक की आयु के लोग थे। अम्बेडकर शताब्दियों से कुचले हुए, अर्द्धनग्न और परेशान लोागे ंको अपना अध्यक्षीय भाषण देने के लिए खड़े हुए तो पाण्डाल तालियों से गूंज उठा सर्वप्रथम उन्होंने 'दोपली' का जहाँ उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी बड़े ही रोचक शब्दों में वर्णन किया। अपने बाल्यकाल का स्मरण करते हए उन्होंने कहा "एक समय था, जब कि हम जिन्हें अछूत कहकर पुकारा जाता था, बहुत प्रगतिशील थे, दूसरी उन्नत जातियों से भी कहीं आगे। देश के इस भाग में हमारे ही लोागें का दबदबा और शासन था।

अछूतों के पतन का उल्लेख करते हुए उन्हें उन्होंने कहा, सेना हमें अपना जीवन स्तर ऊंचा करने का अवसर प्रदान करती है, अछूतों को अपनी योग्यता, बुद्धि, वीरता और चातुर्य दिखाने का भी समय मिलता था। उस समय सेना में अछूतों में से मुख्य अध्यापक भी थे। अंग्रेज सरकार के द्वारा सेना की भर्ती बन्द करके उनसे द्रोह किया है, धोखा और बेवफाई की है, फिर उन्होंने प्रेरणा भरे शब्दों में कहा– "जब तक हम तीन प्रकार के सुधार नहीं कर लेते, किसी स्थायी उन्नति की आशा नहीं की जा सकती, हमें अपने विचारों को उच्च करना चाहिए। हमारी आवाज में शक्ति हो हमारी बात में वजन होना चाहिए इसलिए मैं आपको कहता हूँ कि मृत पशुओं का मांस खाना छोड़ दो, हमारी उन्नति तभी हो सकती है, यदि हम अपने में स्वाभिमान की भावना उत्पन्न करें और हम स्वयं को पहचाने कान्फ्रेंस में पारित एक प्रस्ताव में हिन्दुओं से अपील की गई कि वे अछूतों से भेदभाव न करें, उन्हें नौकरियाँ दें, अछूत छात्रों को खाद्य सामग्री प्रदान करें और अपने मृत पशुओं को स्वयं ही दबाने का कष्ट करें एक अन्य प्रस्ताव में सरकार से अपील की गई कि वह विशेष कानूनों द्वारा मृत पशुओं का मांस खाने तथा शराब पर प्रतिबन्ध लगाये। छात्रों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करें तथा दलित लोगों की ओर से चलाये जा रहे होस्टलों को सहायता दें। 20 मार्च 1927 को अम्बेडकर के नेतृत्व में हजारों अछूत चौदार तालाब से पानी लेने गए। हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की दशा भी बहुत हास्यास्पद है हिन्दुओं के कुओं, तालाबों और धर्म स्थानों पर कुत्ते बिल्लियाँ और दूसरे पशु–पक्षी तो जा सकते थे, वहाँ गधे तो किलोल कर सकते हैं परन्तु खेद, उनके अपने सहधर्मी वहाँ नहीं जा सकते। पहाड़ में हजारों की संख्या में अछूतों को एकत्र देखकर उन्हें चौदार तालाब पर जाने से कोई रोक नहीं पाया। सबसे पहले अम्बेडकर ने पानी पिया उसके बाद दूसरे हजारों लोगों ने पानी लिया, इस प्रतिबन्ध को तोड़कर सदियों से पीसते आ रहे अछूतों ने अपना सिर गर्व से ऊँचा कर लिया। चौदार तालाब का पानी लेने के कारण हिन्दु

नाराज तो थे ही जुलूस पर हमला करने का उनका साहस नहीं हुआ। कुछ शरारती तत्वों ने अफवाह फैला दी कि अछूत विरेश्वर मंदिर में घुसने की योजना बना रहे हैं। यह अफवाह सुनकर सभी स्वर्ण हिन्दू लाठियाँ लेकर गलियों के कोने पर आकर खड़े हो गये। क्योंकि हिन्दू धर्म खतरे में था और उनके देवता का अशुद्ध होने का खतरा था। स्वर्ण हिन्दुओं ने अछूतों पर हमला कर दिया जिसमें कई अछूत गंभीर रूप से घायल हो गये। इतना कुछ होने के बावजूद भी अम्बेडकर अपने लोागें को शांत करते रहे। उनका एक संकेत महाड़ तो क्या सारे महाराष्ट्र को राख बना सकता था, परन्तु उन्होंने बड़े संयम से काम लिया और बड़ी बुद्धिमानी से स्थिति पर काबू पाया। पुलिस ने इस सिलसिले में नौ हिन्दुओं को गिरफ्तार किया उनमें से पाँच को जिला मजिस्ट्रेट ने चार–चार मास का कारावास दण्ड दिया। अम्बेडकर ने बाद में कहा दण्ड भी सम्भवतः इसलिए हो गया हो गया है क्योंकि न्यायधीश एक गैर हिन्दू था। महाड़ मोर्चे की चर्चा सारे देश में हुई। सारे महाराष्ट्र में हिन्दुओं की इस गुण्डागर्दी की आलोचना की गयी। महाड़ के संघर्ष ने जहाँ हिन्दुओं के पाशविक व्यवहार और उनकी नृशंसता को नग्न किया, दूसरी ओर इस घटना ने भारत के सारे अछूतों को झंझोड़ दिया। अम्बेडकर के क्रान्तिकारी कार्य से हिन्दू जलने लगे। लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं ने भी अम्बेडकर की आलोचना की। ऐसी परिस्थितियों में समाचार पत्र की आवश्यकता अनुभव हुई। इसलिए अम्बेडकर ने 03 अप्रैल, 1928 को बम्बई से एक मराठी पत्रिका जारी की। उसका नाम 'बहिष्कृत भारत' रखा। अखबार में जहाँ अम्बेडकर ने दलित व पिछड़े वर्ग को प्रेरणा दी, उन्हें झंझोड़ा और अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए उत्साहित किया, वहीं उन्होंने अपने विरोधियों को मुहतोड़ उत्तर दिया। तिलक की आलोचना का उत्तर देते हुए अम्बेडकर ने लिखा कि यदि तिलक अछूतों में उत्पन्न हुए होते तो वह 'स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा लगाने के बजाय यह कहते छुआछूत की समाप्ति मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।

अम्बेडकर जानते थे कि छुआछूत के प्रसार या हिन्दुओं से इस विषय में प्रार्थना करने से समाप्त नहीं होगी, क्योंकि यह एक "मानसिक रोग है हिन्दु छुआछूत करना तब तक नहीं छोड़ेंगे जब तक उन्हें यह आभास न हो जाये कि छुआछूत कायम रखना वैसे ही है जैसे जलते हुए कोयले को जीभ पर रखना। अम्बेडकर ने कहा, छिने हुए अधिकार अत्याचारियों से प्रार्थना करने से नहीं मिला करते, अपितु वे तो कठिन संघर्ष करने से ही प्राप्त हुआ करते हैं। "अम्बेडकर वैसे तो विधान परिषद की प्रत्येक कार्यवाही में गहरी रूचि लेते थे। परन्तु जहाँ तक अछूतों की समस्या का सम्बन्ध है वह बहुत तीव्र दृष्टि रखते थे। वे परिषद में प्रत्येक अत्याचार का निरावृत्त करते। अछूतों की सरकारी नौकरियों में भरती और उन्नति सम्बन्धी प्रश्न उठाते। एक बार उनकी होम मैम्बर जे.ई.बी. हेटसन् के साथ भी काफी गर्मागर्मी हुई। अम्बेडकर ने पूछा कि क्या पुलिस की भर्ती पर कोई प्रतिबन्ध है? जब होम मेम्बर ने कहा कि कोई नहीं तो अम्बेडकर ने पूछा "तो फिर बम्बई शहर का पुलिस कमिश्नर अछूतों की पुलिस में भर्ती क्यों नहीं करता" हेटसन तिलमिला उठा, उसे कोई उत्तर नहीं सूझ रहा था। अन्त में उसने उत्तर दिया, यह तो एक बड़ा विषय है मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि अछूतों की सेना में भर्ती पर कोई प्रतिबन्ध नहीं परन्तु फिर भी कुछ क्रियात्मक कठिनाईयां हैं, जिनसे परिषद का प्रत्येक सदस्य अवगत है।

हेटसन ने भी सवर्ण हिन्दुओं को ही दोषी ठहराया। महाड़ के चौदार तालाब को शुद्ध किये जाने का समाचार पूरे महाराष्ट्र में फैल गया सम्पूर्ण अछूत जनता स्वयं को अपमानित अनुभव कर रही थी। अम्बेडकर का मन बहुत खिन्न था। इसलिए अछूतों ने एक बार पुनः संघर्ष का बिगुल बजा दिया। बहिष्कृत भारत में 26 जून, 1927 को यह घोषणा की गयी, कि जो अछूत हिन्दुओं की ओर से अपमान का कलंक धोना चाहते हैं और अपने मानवीय अधिकार जताना चाहते हैं, वे अपने नाम बहिष्कृत हितकारणी सभा में दर्ज करवायें। एक ओर सत्याग्रहियों की भर्ती हो रही थी, दूसर ओर महाड़ नगरपालिका ने अगस्त, 1927 को अपना 1924 में पास किया पहला प्रस्ताव जिसके अन्तर्गत प्रत्येक सार्वजनिक स्थान पर अछूतों को जाने की स्वतंत्रता दी गयी थी, वापस ले लिया। नगरपालिका के इस निर्णय ने एक आग का काम किया। 11 सितम्बर, 1927 को अम्बेडकर ने दामोदर हाल में एक बैठक बुलाई, उसमें आगे की कार्यवाही पर विचार किया गया। 25 और 26 दिसम्बर, 1927 को शान्तिपूर्ण आन्दोलन करने की घोषणा की। अम्बेडकर ने कहा "जीवन को लटकाये रखना और कौवे की भांति हजारों वर्षें तक जीते रहना इस संसार में जीवित रहने का एकमात्र ढंग यही है कि जीवन को सत्यता आदर अथवा देशभक्ति जैसे ऊँचे आदर्शों की प्राप्ति के लिए बलिदान करके अमर बनाया जा

सकता है। मानवीय अधिकारों के लिए कितने ही महापुरुष अपना बलिदान दे चुके हैं। बलूस (फलहीन) वृक्ष की भांति निरर्थक जीते जाने से किसी बड़े व मन्तव्य उद्देश्य के लिए अपने भरे यौवन में ही आत्मोसर्ग कर देना अच्छा है।" अम्बेडकर ने हिन्दुओं को चेतावनी दी कि यदि हमारे आन्दोलन में हिन्दुओं ने अड़चन डाली तो सोचना पड़ेगा कि "क्या हिन्दू धर्म में लिपटे रहना चाहिए या इसे त्याग देना चाहिए।" जिस प्रकार से हिन्दू कहते हैं कि तुम्हारा धर्म हमारा धर्म है तो फिर तुम्हारे और हमोर अधिकार भी समान होने चाहिये लेकिन स्थिति इसके विपरीत है जो धर्म अपने करोड़ों अनुयायियों को कुत्ते–बिल्लियों से भी बुरा समझता है और उन पर अनगिनत अत्याचार ढाता है तथा उनसे छुआछूत करता है, वह धर्म बिल्कुल नहीं। ऐसे शैतानी ढांचे को धर्म कभी नहीं कहा जा सकता, धर्म और दासता दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते। छुआछूत अछूतों के लिए उन्नति के सारे मार्ग बन्द कर देती है। वे समाज में उन्नत मस्तक होकर नहीं चल सकते। इसी कारण वे अपना मनपसन्द धन्धा नहीं अपना सकते, न वे पढ़ लिख सकते है। हिन्दू शास्त्रों का यह प्रचार कि तीनों वर्गों की सेवा करने से शूद्रों को स्वर्ग मिलेगा, पूर्णतया शरारत पूर्ण एवं छल कपट हैं, छुआछूत दासता का दूसरा नाम है। कोई जाति अपना स्वाभिमान खोकर उन्नति नहीं कर सकती। इसीलिए यदि सचमुच ही आप अछूतों का उद्धार करना चाहते हो तो उन्हें अपने सामाजिक ढांचे में पूरी स्वतन्त्रता और समानता दो ताकि वे अपने प्रगति का मार्ग स्वंय प्रशस्त कर सकें। छुआछूत अछूतों को हिन्दुओं को अन्त में समस्त राष्ट्र को नष्ट कर दिया है। दलित वर्गों को यदि सम्मान और स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी तोवे अपने परिश्रम, बुद्धि और वीरता से केवल अपने उन्नति नहीं करेंगे, अपितु वे राष्ट्र की उन्नति में भी सहायक होंगे। महाड़ मोर्चा के संघर्ष का दिन निकट आ रहा था। विरोधियों ने 27 नवम्बर, 1927 को एक बैठक बुलाई ताकि अम्बेडकर के संघर्ष को असफल किया जा सके। स्वर्ण हिन्दुओं ने 12 दिसम्बर, 1927 को महाड़ की दीवानी अदालत में अम्बेडकर शिवतार कर, कृष्णा जी, एल. कर्दम के विरूद्ध शिकायत कर दी। अदालत ने 14 दिसम्बर, 1927 को निर्णय पर्यन्त निषेधाज्ञा जारी कर दी।

कान्फ्रेंस की जोरदार तैयारी की गई चूंकि हिन्दू पण्डाल के लिए अपनी भूमि देने को तैयार नहीं हुआ, इसलिए पण्डाल के लिए भूमि एक मुसलमान से प्राप्त की गई। हिन्दू दुकानदारों ने अछूतों को सामान देने से इन्कार कर दिया, इसलिए बाहर से लोगों के लिए काफी सामान खरीदा गया। अम्बेडकर दो सौ प्रतिनिधियों के साथ गांव पहुँचे। वहाँ से महाड़ पांच मील था। महाड़ में लगभग तीन हजार संघर्षकर्ता अम्बेडकर की प्रतीक्षा कर रहे थे। अम्बेडकर के पहुँचते ही आकाश नारों से गूंज उठा अभी स्वागत हो ही रहा था कि पुलिस कप्तान ने जिला मजिस्ट्रेट का एक पत्र उन्हें दिया जिसमें तुरन्त मिलने का आदेश था। मजिस्ट्रेट और अम्बेडकर के मध्य बातचीत हुई। अम्बेडकर ने अपना मोर्चा रोकने से इन्कार कर दिया। कान्फ्रेंस सायं चार बजे आरम्भ हुई। 24 हजार से भी अधिक लोग कान्फ्रेंस में शामिल हुए। अम्बेडकर ने कहा, "प्रारम्भ में मैं अपने विरोधियों को बता देना चाहता हूं कि हम चौदार तालाब में से पानी इसलिए नहीं लेना चाहते हैं ताकि हम अपना मानवीय अधिकार जता सकें। हम तालाब पर यह बताने के लिए जा रहे हैं ताकि हम बता सकें कि हम मनुष्य हैं। केवल मन्दिर प्रवेश और छुआछूत की समाप्ति के साथ ही समस्या का समाधान नहीं हो जाता। प्रत्येक स्थान जैसे कि अदालतें, पुलिस, सेना से और व्यापार के द्वार हमारे लिए खुलने चाहिए" मनु स्मृति के विरूद्ध हृदय को विचलित कर देने वाले भाषण हुए। कान्फ्रेंस हिन्दू ग्रन्थों की निन्दा तक ही सीमित नहीं रही, रात के दो बजे पण्डाल के सामने एक गहरे गड्ढे में मनुस्मृति को जलाया गया। पुरोहित शाही की धज्जियाँ उड़ाने वाले जर्मन के मार्टन लूथर के पश्चात् रूढ़िवादियों और रीतिरिवाजों की दासता के विरूद्ध यह असहाय आक्रमण था। यह दिन भारत के इतिहास में एक अविस्मरणीय दिन है, क्योंकि इस दिन अम्बेडकर ने मनुस्मृति जलाई थी और उसके स्थान पर एक नया ग्रन्थ चुनने की माँग की थी। कान्फ्रेंस ने माँग की थी कि हिन्दू समाज को एक श्रेणी में रखा जाये तथा इस बात की माँग की गई कि वर्तमान पुरोहित धन्धे को जनतंत्र प्रणली में बदला जाये ताकि जो भी चाहे पुरोहित बन सके। अगले दिन कान्फ्रेंस पुनः आरम्भ हुई। अम्बेडकर ने संघर्ष पर बल दिया, उन्होंने कहा मुझे प्रसन्नता है कि आप अपने अधिकारों के लिए और अपनी प्रतिष्ठा के लिए तीव्र संघर्ष को तैयार हें। परन्तु आपको संघर्ष में कूदने का निर्णय बहुत सोच विचार के बाद करना चाहिये। इस बात को याद रखो कि संसार में बड़ी उपलब्धियाँ कठिन संघर्ष के बिना प्राप्त नहीं हो सकती।

चौदार तालाब पर कब्जा करने के लिए सत्याग्रहियों के नाम दर्ज कराये गये। आठ अजार सत्याग्रहियों ने अपेन नाम दर्ज करवाये। एक ही स्वर व लय में जन समूह नारे लगा रहा था कि या तो हम चौदार तालाब पर कब्जा करेंगे। अथवा हम कारागार जायेंगे। जिला मजिस्ट्रेट और जिला कलेक्टर को कान्फ्रेंस के मोर्चे लगाने के निर्णय से सूचित किया गया वे दोनों पण्डाल में पहुँचे, "बम्बई विधान परिषद के अनुसार तालाब, स्कूल और सड़क आदि सभी सार्वजनिक संस्थायें प्रत्येक के लिए खुली हैं। परन्तु 12 पुरुषों ने अदालत में एक केस दायर किया। इससे कहा गया कि, चौदार तालाब तक निजी सम्पत्ति है आपको अदालत के निर्णय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। 27 दिसम्बर, 1927 को अम्बेडकर को अपना पहला प्रस्ताव वापस लेना पडा। भड़के हुए लोगों ने मोर्चा स्थगित करने के निर्णय को शोकग्रस्त मनों से सुना मोर्चा अभी स्थगित कर दिया गया। लेकिन जुलूस निकालने का निर्णय लिया गया। अम्बेडकर के नेतृत्व में जुलूस निकला। जुलूस पूरे महाड़ में घूमा स्वतंत्रता के मतवालों के नारे चारों ओर छा गये। हिन्दू भयभीत होकर शहर की परित्याग कर गये। जो कुछ शहर में थे, वे भी मौन धारण किये अन्दर ही अन्दर विष घोल रहे थे परन्तु कुछ नहीं कर सकते थे, इसलिए बन्द करके अन्दर छिपे रहे, दो घण्टे के पश्चात् जुलूस पण्डाल में लौटा किसी को कोई शरारत करने का साहस न हुआ। अम्बेडकर बम्बई विधानसभा के मनोनीत सदस्य थे। ब्रिटिश सरकार की उनकी ओर से की गई आलोचना बहुत चुभती थी। अम्बेडकर कोई ऐसा अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे, जबकि वह दलित पिछड़ों को नेतृत्व न करें वे ब्रिटिश सरकार की कड़ी आलोचना करते थे कि दलित व पिछड़े चाहे कितने भी योग्य तथा बुद्धिमान क्यों न हो सरकारी नौकरियों में भर्ती नहीं करती परिणामस्वरूप मार्च, 1927 में एस.के. यादव नाम के एक अछूत को डिप्टी कलैक्टर नियुक्त किया गया। 19 मार्च, 1928 को उन्होंने बेगार प्रथा के विरूद्ध संघर्ष आरम्भ किया। उन्होंने बम्बई विधान परिषद में एक बिल पेश किया जिसका भाव 1874 के बम्बई मौरूली जमींदारी कानून में संशोधन करना था। यह कानून अछूतों से सरकारी कामों में बेगार लेने की आज्ञा देता था। यदि कोई अछूत मौजूद न हो तो उसके पिता या समान स्तर के सदस्य को बेगार पर ले जाया जाता था। इसके बदले बेगार करने वाले अछूत को 2 आने से लेकर 1 रुपये मासिक तक उजतर दी जाती और इसके अलावा उसे थोड़ी भी भूमि जिसे वेतन कहा जाता था, दी जाती थी। 03 अगस्त, 1928 को यह बिल बम्बई विधान परिषद में पेश हुआ। भारत के इतिहास में 1930 का वर्ष बहुत ही महत्वपूर्ण वर्ष है। अम्बेडकर जो अछूतों के प्रमुख नेता बन चुके थे उन्होंने मंदिर प्रवेश आन्दोलन प्रारम्भ किया। नासिक के अछूतों ने एक मोर्चा कमेटी संगठित कर ली थी जिसके सचिव श्री माउराव गराफवाड ने काला राम मंदिर के ट्रस्टियों को यह लिख भेजा था कि यदि निश्चित तिथि तक उन्होंने मंदिर अछूतों के लिए न खोला तो वे मोर्चा आरम्भ कर देंगे। मोर्चा कमेटी के आमंत्रण पर लगभग 15 हजार स्वयंसेवक और प्रतिनिधि नासिक में पहुँच गये। 02 मार्च, 1930 को नासिक में एक विशाल कान्फ्रेंस अम्बेडकर के नेतृत्व में हुई जो बाद में एक जुलूस के रूप में बदल गयी चार–चार पुरूषों की मीलों लम्बी पंक्तियाँ बन गयी। नासिक के इतिहास में यह सबसे बड़ा और रिकार्ड तोड़ जुलूस था, इसे नियंत्रण करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट भी जुलूस के साथ मंदिर के गेटों की ओर बढ़ रहे थे। मंदिर के सभी द्वार बन्द कर लिये गये थे, इसलिए प्रदर्शनकारी गोदावरी घाट पर आकर रूक गये और जुलूस एक सभा के रूप में बदल गया।

रात ग्यारह बजे नेता पुनः इकट्ठे हुए उन्होंने मंदिर के गेटों के बाहर शान्तिपूर्ण मोर्चा चलाये रखने के लिए पुरुष और महिलाओं का पहला जत्था मंदिर के चारों गेटों पर डट गया। आठ हजार सत्याग्रही अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। जिस समय सत्याग्रह अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे जिस समय सत्याग्रही मंदिर के द्वार पर डटे हुए थे, उस समय तीन हजार से भी अधिक स्त्री–पुरुष मंदिर जा चुके थे। पुलिस इतनी सहमी हुई थी कि पुलिस कप्तान ने अपना कार्यालय ही मंदिर से बाहर एक तम्बू में लगा लिया। हिन्दू मंदिर के अन्दर थे, उन्होंने समस्त द्वार भी बन्द कर रखे थे। यदि द्वार एक बार भी खुल जाते तो पता नहीं क्या होता। रात को नासिक के नागरिकों की एक बैठक डॉ. कुर्ट कोटी की प्रधानता में हुई ताकि कट्टरवादी हिन्दुओं को पागलपन से रोका जा सके। परन्तु सनातनी हिन्दू इतने भड़के हुए थे कि डॉ. कुंकोटी की सभा पर जूते, इंट और पत्थर फेंकने लगे। इस समय यदि साक्षात रामचन्द्र भी स्वयं हिन्दुओं को शिक्षा देते तो उसे भी एक ओर फेंक देते। मोर्चा एक मास तक चालू रहा। अन्तः 09 अप्रैल भी आ पहुँचा। उस दिन राम की मूर्ति की रथ यात्रा निकालनी थी। सवर्ण हिन्दुओं और अछूतों में यह समझौता हुआ कि दोनों ओर से

बलिष्ठ व्यक्ति रथ खीचेंगे। अम्बेडकर भी कुछ चुने हुए साथियों सहित गेट के निकट खड़े थे परन्तु हिन्दुओं ने वचन भंग कर दिया सोचे समझे षड्यंत्र के अनुसार रथ बाहर निकला ही था कि हिन्दू रथ को एक संकरी और कष्टपूर्ण गली की ओल ले भागे। गली के सिरे पर शस्त्रधारी पुलिस का पहरा था। एक अछूत नौजवान ने वीरता का परिचय देते हुए पुलिस का घेरा तोड़कर रथ को जा पकड़ा बस फिर क्या था हिन्दू गिद्दों की भांति अछूतों पर टूट पड़े। ईंट और पत्थरों की वर्षा होने लगी। नासिक मोर्चे की कटुता सारे जिले में फैल गयी। हिन्दुओं ने अछूत छात्रों को स्कूल से बाहर निकाल दिया, हिन्दु दुकानदारों ने अछूतों को जीवनोपयोगी वस्तुयें देना बन्द कर दिया और कई स्थानों पर उन्हें सड़क पर चलने से रोक दिया गया। अछूतों का विस्तत स्तर पर सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार किया गया। कई गांवों में अछूतों की नाकेबन्दी की गयी और उन पर अत्याचार किये गये थे। इतना दुःख सहकर भी अछूतों ने मोर्चा अक्टूबर 1930 तक चालू रहा। साइमन कमीशन रिपोर्ट 1930 में प्रकाशित की गयी, कमीशन ने केन्द्रीय विधान सभा में 250 सीटें हिन्दुओं को, जिसमें अछूत लोग भी शामिल थे, दी। अछूतों को आरक्षित सीटों के साथ संयुक्त चुनाव क्षेत्र का अधिकार भी दिया गया।

अछूतों ने साइमन की रिपोर्ट और दूसरी परिस्थितियों का जायजा लेने के लिए नागपुर में एक अखिल भारतीय कान्फ्रेंस बुलाई। 08 अगस्त, 1930 को इस कान्फ्रेंस का पहला अधिवेशन नागपुर में अम्बेडकर की प्रधानता में हुआ। अम्बेडकर ने कहा कि 'यदि युगोस्लाविया, इस्तोनिया, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, लताबनिया, लिथुनिया और रूस जैसे देश, जहाँ अलग–अलग, जातियाँ सभ्यताओं और धर्मों के लोग निवास करते हैं, स्वतंत्र राष्ट्रों के रूप में एकता के साथ काम करते हैं तो भारत के लोगों के लिए ऐसा क्यों सम्भव नहीं। स्वतंत्र भारत का विधान बनाते समय अलग–अलग भारतीयों की स्थिति का ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा तथा अछूतों की ओर से तथा हिन्दुओं की ओर से मदन मोहन मालवीय ने हस्ताक्षर किये। साधारण निर्वाचन क्षेत्रों से दलित वर्ग के लिए राज्य विधान सभाओं में क्षेत्र आरक्षित होंगे।

अस्पृश्यता का विाचर घृणा भाव को जन्म देता है, गांधी ने ऐसे हिन्दू को जो इस विचार का पोषक है, पाखण्डी बताकर उसकी भर्त्सना की। जब तक हिन्दू अस्पृश्यता को अपने धर्म का अंग मानते रहेंगे, तब तक स्वराज्य प्राप्त करना कठिन है। युधिष्ठिर स्वर्ग में अपने कुत्ते के बिना प्रवेश नही करता फिर कैसे युधिष्ठिर के वंशज स्वराज्य की प्राप्ति अस्पृश्यों के बिना कर सकते हैं।[10]

मान्यवर कांशीराम का दलितों के उत्थान में योगदान –

पंजाब प्रान्त में जन्मे काशीराम जी की कर्म भूमि मुख्य तौर पर उत्तर भारत रही है और इन्होंने आजीवन अपना ध्येय दलित के उद्धार में लगाया एवं इनके हक की लड़ाई लड़ी। मान्यवर कांशीराम ने सन् 1978 में 'वामसेफ का गठन कर दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यक समुदायों के शिक्षित और अपेक्षाकृत जाग्रत वर्ग को एक अखिल भारतीय संगठन के साथ जोड़ने में सफलता प्राप्त की इसमें 3000 से ज्यादा डॉक्टर , 15 हजार वैज्ञानिक, 70 हजार स्नातक और 500 डॉक्टरेट की उपाधि वाले सदस्य शामिल हैं। बामसेफ को कांशीराम ने पूरी तरह गैर–राजनैतिक और गैर–आंदोलनकारी संगठन बनाया लेकिन बामसेफ ने ही वह जमीन तैयार की, जिस पर आज बहुजन समाज पार्टी की फसल खड़ी है। इसलिए बसपा के अंदर बामसेफ को बहुजन समाज का 'ब्रेन बैंक, टैलेंट बैंक और आर्थिक बैंक' माना जाता है।[11] वामसेफ के माध्यम से कांशीराम ने कार्यकर्ताओं की फौज और आर्थिक संसाधन तो जुटा लिए लेनिक अपने आंदोलन के विस्तार से अब ऐसे जन संगठन की आवश्यकता थी तो दबे कुचले वर्ग पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ मुखर प्रतिरोध कर सके। इस काम के लिए वामसेफ उसकी अपने सीमाएँ थी इसलिए कांशीराम जी इस काम के लिए 06 दिसमबर 1981 को दलित शोषित समाज संघर्ष समिति' (डी.एस.–4) का गठन किया गया।

डी.एस.–4 की सदस्यता बहुजन समाज के सभी सदस्यों के लिए खोज दी गयी। इस संगठन का उद्देश्य बहुजन समाज को एक राजनैतिक शक्ति के रूप में निर्मित करना था। संगठनात्मक और रचनात्मक दृष्टि से उत्तर भारत के आराम पसंद नेताओं को एक मायने मे कांशीराम ने पीछे छोड़ दिया। अब जरूरत महसूस होने लगी एक राजनैतिक पार्टी की, जिसे बाद में कांशीराम जी ने सन् 1984 में बहुजन समाज पार्टी

की स्थापना की जो कालान्तर में उत्तर भारत में विशेषकर उत्तर प्रदेश में एक मजबूत राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरी। कांशीराम ने पूरे जीवन भर बहुजनों के लिए लड़ाई लड़ी और अपने उत्तराधिकारी के तौर पर मायावती को अधिकृत किया जिन्होंने उत्तर प्रदेश में कई बार सरकार भी बनाई और दलितों के हित में कई ऐतिहासिक फैसले भी लिये गए।

रामास्वामी पेरियार का दलितों के उत्थान में योगदान –

रामास्वामी नायकर पेरियार की दक्षिण भारत के दलितों के हितों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है। पेरियार ने अपने राजनैतिक जीवन की शुरूआत कांग्रेस से की। 1919 से 1925 तक कांग्रेस सम्मेलनों में लगातार वह समुदाय आधारित आरक्षण की माँग उठाते रहे हैं। रामास्वामी नायकर ने कांग्रेस से अपना सम्बन्ध इसलिए तोड़ा क्योंकि उनके ऊपर और मद्रास के अन्य गैर–ब्राह्मणों के ऊपर लगातार प्रहार किये गये। पेरियार ने अपना दल अलग बना लिया जिसे वे आत्मसम्मान आन्दोलन कहते थे।[12] पेरियार दल के कार्यकर्ता काली कमीज पहनते थे, काली कमीज अंधेरा तथा न्यूनता का प्रतीक है। 26 जनवरी, 1952 के दैनिक हिन्दू (मद्रास) में पेरियार ने लिखा कि साधारणतया काले रंग का प्रयोग मृत्यु या दुःखों को प्रकट करने के लिए किया जाता है, हम द्रविड़ लोगों की स्थिति मृत्यु से भी बदतर है, हम शूद्र हैं। इस बात को पुराण, इतिहास, स्मृति आदि कहते हैं। हम मंदिर में नहीं जा सकते, उस मंदिर में जिसमें पत्थर का भगवान रहता है।[13] पेरियार का आन्दोलन घोर ब्राह्मण विरोधी था। वे विवाह तथा अन्य कार्यों के लिए ब्राह्मण, पुरोहितों को न बुलाने के लिए उकसाते थे।[14] पेरियार राजनीति तथा अन्य कार्यों में केवत तमिल भाषा का प्रयोग करने पर बल देते थे। उन्होंने हिन्दी, राम, मनु आधारित जाति व्यवस्था, छुआछूत, अन्धविश्वास, ब्राह्मण पुरोहितों पर आक्रमण, हिन्दू देवताओं विशेषकर गणेश की मूर्तियों आदि का जमकर विरोध किया। इतना ही नहीं उन्होंने अनेक बार भारतीय संविधान को जलाया, एक बार तो उन्होंने हिन्दी के विरेाध में राष्ट्रीय ध्वज तक जलने की घोषणा कर दी थी। रामायण की होली जलाना, राम के पुतले जलाना तथा जबरदस्ती ब्राह्मणों के गले से जनेऊ तक तोड़ डाले। पेरियार ने अपने विचारों पर प्रचार करने के लिए द्रविडियन प्रेस लगायी, जिसमें पार्टी का एक दैनिक पत्र विडुतलै तमिल में एक मासिक पत्र 'अनभई' प्रकाशित किया। उन्होंने एक पुस्तक 'इरविन इल्ले' (भगवान नहीं) प्रकाशित की जिसमें सामाजिक क्रान्ति और समाज सुधार पर अपने तर्कपूर्ण और स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत किये। इस प्रकार से पेरियार दलितों, पिछड़ों को सम्मान दिलाने के लिए संघर्ष करते रहे।

सभी दलितों के साथ भेदभाव होता है, उन्हें उनके हक से वंचित रखा जाता है। ये बात आम तौर पर दलितों के बारे में कही जाती रही है। लेकिन करीब से नजर डालें तो दलित, ऊँच–नीच के दर्जे में बंटे हिन्दू समाज का ही आईना है। आजादी के बाद बने भारत के संविधान में दलित हितों के संरक्षण के लिए ये व्यवस्थाएँ की गई हैं। हालांकि उन्हें लागू करने की प्रक्रिया आधी–अधूरी ही रही है। फिर भी इनकी वजह से दलितों के एक तबके को फायदा हुआ है। अस्तित्व के लिए उनकी लड़ाई आसान हुई है। इन कदमों की वजह से आज दलितों की हर जगह नुमाइंदगी होती है। राजनीतिक (संसद और विधानसभाओं–स्थानीय निकायों) में ये संख्या सुनिश्चित है। आज कई दलितों ने कारोबार में भी सिक्का है और यहाँ तक कि उनके अपने दलित इंडियन चैम्बर ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री भी है। तो ऐसा लगता है कि दलितों के एक तबके ने काफी तरक्की कर ली है, लेकिन अभी भी ज्यादातर दलित उसी हालत में है, जिस स्थिति में वो आज से एक सदी पहले थे। जिस तरह से आरक्षण की नीति बनाई गई है, ये उन्हीं लोगों को फायदा पहुँचाती आ रही है, जो इसका लाभ लेकर आगे बढ़ चुके हैं। दलितों में भी एक छोटा तबका ऐसा तैयार हो गया है, जो अमीर है। जिसे व्यवस्था का लगातार फायदा हो रहा है। ये दलितों की कुल आबादी का महज 10 फीसद है। अम्बेडकर ने कल्पना की थी कि आरक्षण की मदद से आगे बढ़ने वाले दलिता, अपनी बिरादरी के दूसरे लोगों को भी समाज के दबे–कुचले वर्ग से बाहर लाने में मदद करेंगे। मगर, हुआ ये है कि तरक्कीयाफ्ता दलितों का ये तबका, दलितों में भी सामाजिक तौर पर खुद को ऊँचे दर्जे का समझने लगा है। दलितों की ये क्रीमी लेयर बाकी दलित आबादी से दूर हो गई है।

निष्कर्ष –

डॉ. अम्बेडकर ने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए अनेक कार्य किए, उन्होंने महिलाओं को सामाजिक व कानूनी क्षेत्र में अधिकार दिलाए व उनके आगे बढ़ने व गरिमा के साथ रहने के माग्र खोल दिये, जिसके परिणामस्वरूप आज महिलाएं हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कन्धा–से–कन्धा उन्नति कर रही हैं। साथ ही अम्बेडकर ने दलितों व शोषितों को मुख्य धारा में लाने के लिए उन्हें संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया ताकि उनके साथ किसी भी तरह का भेदभाव न हो सके और शोषित वग्र भी अपना विकास कर सके, गरिमापूर्ण जीवनयापन कर सके और देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सके।

संदर्भ सूची

1. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोष, प्रयाग साहित्य सम्मेलन, 1984, पृ.सं.–35
2. आदित्येश्वर कौशिक, संस्कृत हिन्दी कोश, दिनमान प्रकाशन, 1986, पृ.सं.–162
3. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, प्रयाग साहित्य सम्मेलन, 1984, पृ.सं.–35
4. डॉ. अम्बेडकर 'अछूत कौन और कैसे', बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ, 1990
5. नर्मदेश्वर प्रसाद, 'जाति व्यवस्था', 1965, पृ.सं.–17
6. मनुस्मृति, ग्रन्थ–1, श्लोक–31
7. महाभारत, शान्ति पर्व
8. फारवर्ड, कलकत्ता, 07 नवम्बर, 1923
9. बॉम्बे फ्रॉनिकल, 01 मई, 1924
10. यंग इण्डिया, 04 मई
11. चंचरीक कन्हैयालाल, आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2013, पृ.सं. –364
12. इसचिक, राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ दक्षिण भारत का एकीकरण, दिल्ली, 1965, पृ.सं. 12–13
13. घूसिया कन्हैया लाल, अगर उजाला, 09 अक्टूबर, 1964
14. जयराम आर., द्रमुक का इतिहास, मद्रास, 1963

अखबार –

- दैनिक जागरण
- अमर उजाला
- हिन्दुस्तान

गांधीवाद और मानवतावाद

*** डॉ. लोकेश जसोरिया,** सहायक आचार्य
**** डॉ. सीमा मीणा,** सहायक आचार्य
राजकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़

सार –

एक आस्तिक व्यावाहरिक सिद्धान्त के रूप में मानवतावाद की कल्पना पहली बार भारत में 2000 ई. पू.के आस पास की गई थी। इस सांसारिक मानव के लिए धर्म निरपेक्ष दार्शनिक दृष्टिकोण में, गांधी जी धर्म को व्यक्ति की अखंडता और समरसता की एक जुटता के रूप में समझते है। उसके लिए स्वतंत्र इच्छा ''तर्कसंगत आत्मा'' की स्वतंत्रता है, नैतिकता बाहरी अनुरूपता की बात नहीं हैं, बल्कि आंतरिकपूर्ति की है। उनके समग्र मानववाद को उनके सात सामाजिक पाप द्वारा दर्शाया गया है – सिद्धान्तों के बिना राजनीति काम के बिना वाणिज्य, चरित्र के बिना ज्ञान, विवेक के बिना आनन्द, नैतिकता के बिना विज्ञान तथा बलिदान के बिना पूजा।

उनकी श्रम प्रार्थना में पढ़े गए ग्यारत व्रत सत्य और अहिंसा के साथ नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मूल्यों के एकीकरण के लिए नींव के रूप में शुरू हुए। अहिंसा एक नीति के बजाय एक पंथ होना चाहिए। गांधी के सत्य का अर्थ था सामाजिक विकास के लिए आत्म साक्षात्कार की स्वतंत्रता। उन्होंने धर्म और धार्मिक सहिस्णुता के नागरिक कार्य में मानवता के इन दो सिद्धान्त विषयों को पूरा किया जिसका उद्देश्य नैतिक समाजों में नैतिक व्यक्तियों को विकसित करना था। गांधी जी कहते है, कि इक्कीसवीं सदी को विज्ञान और अध्यात्म का संश्लेषण, मानव अधिकारों के साथ समाजवाद, अहिंसा के साथ सामाजिक परिवर्तन लाना चाहिए।

कुंजी शब्द – गांधीवाद मानवतावाद, नैतिकता, धर्मनिरपेक्ष, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, समाजवाद, मूल्य, सात सामाजिक पाप, ग्यारह व्रत।

एक दार्शनिक और साहित्यिक आंदोलन के रूप में मानवतावाद 14वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इटली में उत्पन्न हुआ और पूरे यूरोप में फैल गया। एक नास्तिक सिद्धांत के रूप में इसकी कल्पना 17 वीं शताब्दी में फ्रांसीसी दार्शनिक द्वारा की गई थी लेकिन एक आस्तिक–व्यावहारिक सिद्धांत के रूप में इसकी परोक्ष रूप से लगभग 200 ई.पू. वेदों और उपनिषदों के समय में ''भारत ने एक आदिम ब्रहमांडीय–पारलैकिक निरपेक्ष वास्तविक अस्तित्व की शाश्वत सर्वोच्चता की घोषणा की है जो चित ही है। महावीर, गौतम बुद्ध, भगवद–गीता, पतंजलि के योगसूत्र, भगवत पुराण और गांधी ने नैतिक मूल्यों की पवित्रता की घोषणा की'' (वी.पी.वर्मा, 1979) पृष्ठ–3)। सांसारिक जीवन वैदिक आर्यों के लिए केंद्रीय चिंता का विषय है।

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राजा राम मोहन राय के ब्रह्म समाज और दयानंद सरस्वती के आर्य समाज द्वारा अग्रणी हिंदू पुनर्जागरण देखा गया, जो अंततः विवेकानंद के वेदांतिक हिंदू धर्म में विकसित हुआ। वेदांतिक हिंदू धर्म अपने व्यावहारिक पहलू के रूप में कमजोर और जरूरतमंदों की सेवा के महत्व पर जोर देता है। वह समाज सबसे बड़ा है। जहां उच्चतम सत्य व्यावहारिक हो जाते हैं। पश्चिम और पूर्व में विभिन्न रूपों को ग्रहण करते हुए मानवतावाद का महत्वपूर्ण विकास हुआ है। वेदांतिक मानवतावाद के विपरीत पश्चिमी मानवतावाद नास्तिक है क्योंकि ईसाई धर्म ईश्वर को निर्माता के रूप में मानता है।

उद्देश्य पद्धति –

यह पत्र गांधी की विचारधारा को मानवतावाद पर केंद्रित करता है। इस पत्र में गांधीवादी विचार और न्यायपूर्ण और मानवीय समाज के प्रचार के संबंध में उनके अनुभवों और प्रयोगों के बारे में चर्चा की गई।यह पेपर द्वितीय डेटा स्रोतों, प्रकृति में वर्णनात्मक और लेखकों के व्यक्तिगत विचारों पर आधारित है। यह पत्र जांच गांधी के मानवतावाद का दर्शन पर केन्द्रीत है।

मानवतावाद क्या है :

मानवतावाद शब्द लैटिन 'हयूमनिटस' से आया है[1], जिसका अर्थ है ऑन्कोलॉजिकल व्यक्तिवाद और मनुष्य की अंतर्निहित क्षमताओं की समाप्ति के माध्यम से मानव स्प्राइट की पूर्णता की खोज व्यक्तिपरकता और इसके अभिविन्यास में आशावादी है। मानवतावाद एक दार्शनिक और नैतिक रूख है जो व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से मनुष्य के मूल्य और एजेंसी पर जोर देता है और आम तौर पर स्थापित सिद्धात या विश्वास (विश्वास) पर महत्वपूर्ण सोच और सबूत (तर्कवाद, अनुभववाद) को प्राथमिकता देता है। यह घास के पत्तों (दरभा) में, कमल और डैफोडील्स की सुंदरता में हंस और कोयल के चहकने में भी अर्थ और महत्व पाता है।

जटायु के लिए राम का शोक, गौतम बुद्ध की पीड़ा में प्रिय के लिए[2], रोगी के पालन–पोषण में, दोपहर की धूप में पसीन से तर पत्थर तोड़ने वाली विधवा में और महाभारत युद्ध में मृत अपने पुत्रों के लिए पीड़ित गांधारी के विलाप में मानववाद दृष्टिगत होता है।

दूसरे शब्दों में, यह गहरे आवक प्रामाणिक अनुभवों (Cf.F.H.ब्रैडली) के ठोस चरित्र को देखता है। संवेदनशीलता की विशिष्टता और गहराई मानवतावादी के अनुभव की विशेषता है। मानवतावाद मानता है कि खोज के साथ बातचीत के माध्यम से और प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के साथ मुठभेड़ के माध्यम से व्यक्तित्व का निर्माण और ठोस होता है।[3]

महात्मा गांधी और मानवतावाद :

महात्मा गांधी खुले विचारों वाले थे। वह किसी भी स्रोत से कोई भी विचार अपनाने को तैयार थे। वह घर से लेकर प्रख्यात विचारक और टॉल्स्टॉय जैसे लेखक तक कई व्यक्तियों और बुद्धिजीवियों से प्रभावित थे। गांधी अपने माता–पिता से बहुत प्रभावित थे। उनकी माँ पुतलीबाई, जो धर्मनिष्ठ स्वभाव की महिला थीं, उनके धार्मिक विचारों को प्रभावित करती थीं।

गांधीजी कहते हैं, ''उत्कृष्ट छाप'' मेरी स्मृति पर मेरी मां ने छोड़ी है, वह है साधुता की, वह गहरी धार्मिक थी। वह दैनिक प्रार्थना के बिना अपना भोजन लेने के बारे में नहीं सोचती (एम. के. गांधी, 2011 पृष्ठ 4)। उनकी माँ पुतलीबाई के पास मजबूत सामान्य ज्ञान था (एम.के.गांधी, 2011, पी–5)। उन्होंने भारतीय कहावत अपनी मां से सीखी कि 'सच्चाई से बढ़कर कुछ नहीं है'[4] उन्होंने अपनो मां से यह भी सीखा है कि हानिरहित या अहिंसा की स्थिति सर्वोच्च धर्म है और सर्वोच्च कर्तव्य है (डी एम दत्ता, 1953 पी–9)। गांधी ने अपने पिता काबा गांधी से बहुत कुछ सीखा। उनका कहना है कि व्यावहारिक मामलों के उनके समृद्ध अनुभव ने उन्हें सबसे जटिल प्रश्नों के समाधान में और सैकड़ों पुरूषों के प्रबंधन में अच्छी स्थिति में खड़ा किया (एक. के.गांधी, 2011 पृष्ठ – 4)।

गांधी ने अन्य दो घटनाओं का उल्लेख किया जो हमेशा उनकी स्मृति से चिपकी रहीं और उनके विचारों को आकार दिया। पहली थी श्रवण पितृभक्ति नाटक (श्रवण की अपने माता–पिता के प्रति समर्पण के बारे में एक नाटक) पर पुस्तक, उन्होंने इसे गहन रूचि के साथ पढ़ा, उन्होंने तीर्थ यात्रा पर अपने अंधे माता–पिता को अपने कंधों पर लगाए गए गोफन के माध्यम से श्रवण की एक तस्वीर भी देखी श्रवण की पुस्तक और चित्र ने उनके मन पर एक अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने अपने आप से कहा कि यहाँ उनके लिए नकल करने का एक उदाहरण था, श्रवण की मृत्यु पर उनके माता–पिता का व्यथित विलाप उनकी स्मृति में ताजा था (एम.के.गांधी, 2011 पृष्ठ–6)। इस धारणा ने मानवता की सेवा करने के लिए बढ़ी प्रवृन्त किया है।

गांधी के जीवन पर एक और महत्वपूर्ण प्रभाव हरिशचंद्र का नाटक था जिसने उनके मन को प्रभावित किया। वह इसे देखकर कभी नहीं थक सकते थे। उन्होंने दिन–रात खुद से यह सवाल पूछा कि 'सब को हरिश्चंद्र की तरह सच्चा क्यों नहीं होना चाहिए?' सत्य का पालन करने और सभी परीक्षाओं से गुजरने के लिए, हरिश्चंद्र जिस आदर्श से गुजरे, उसने उन्हें प्रेरित किया, वे सचमुच हरिश्चंद्र की कहानी पर विश्वास करते थे, गांधी के लिए हरिश्चंद्र और श्रवण दोनों ही उनके लिए जीवित वास्तविकताएं हैं (एम.के.गांधी, 2011, पृष्ठ–7)। जैन धर्म ने गांधी पर गहरा प्रभाव डाला। गुजरात में जैन धर्म एक महान जीवत शक्ति रहा है।

उन्होंने जैनियों की शिक्षाओं और हरिभद्र सूरी के दार्शनिक पाठ सद्रसाना समुच्य को भी पढ़ा। जैन धर्म अहिंसा पर अधिक जोर देता है जिसने और धार्मिक सहिष्णुता। धर्म के नागारिक कार्य को स्वर्गीय और सांसारिक शहर के बीच संचार के आधार पर मान्यता दी गई थी। स्वर्गीय शहर मनुष्य के सामाजिक जीवन का आदर्श या आदर्श था, इसकी मान्यता का अर्थ था मनुष्य की प्रतिबद्धता, जितना संभव हो, सांसारिक शहर में इसकी विशेषताओं को महसूस करना। गांधी का सांसारिक शहर 'रामराज्य' था और उन्होंने जीवन भर इसे महसूस करने की कोशिश की। मानवतावादियों के लिए, सहिष्णुता का रवैया मानव जाति के सभी धार्मिक विश्वासों की मौलिक एकता के उनके हढ़ विश्वास और इसलिए एक सार्वभौमिक धार्मिक शांति की संभावना से उत्पन्न होता है। गांधी जी की दैनिक प्रार्थना में सभी धार्मिक विश्वासों को सहन करने का संकल्प और सभी धर्मों के लोगों से उन्हें जो सहयोग मिला, वह उनकी वास्तविक सहिष्णुता की पुष्टि करता है। गांधी का धर्म संकीर्ण सांप्रदायिक नहीं था। वह नहीं चाहता था कि उसका घर चारों तरफ से दीवारों से घिरा हो और खिड़किया भरी हों। वह चाहता था कि सभी देशों की संस्कृतियों को उसके घर के चारों और यथासंभव स्वतंत्र रूप से उड़ाया जाए।

जाति और पंथ के उन लेबलों के उपयोग को हतोत्साहित करने का प्रयास पूरा हो सकता है जो मनुष्य और मनुष्य के बीच काल्पनिक अवरोध पैदा करते हैं।

न केवल अस्पृश्यता की प्रथा को समाप्त किया जाना चाहिए, बल्कि हरिजन (अछूत) को हरिजन जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए[5] इसी तरह लेबलों को हटाकर हिंदू और मुस्लिम मतभेदों को हल किया जा सकता हैं। इस तरह के प्रयास से अब साम्प्रदायिक सौहार्द का स्वरूप नहीं रहेगा, बल्कि इससे एक–मानवता का विकास होगा। यद्यपि गांधी जैसा शक्तिशाली व्यक्तित्व कुछ समय के लिए समुदायों में सामंजस्य स्थापित कर सकता है, जब व्यक्तिगत प्रभाव कमजोर हो जाता है, तो समुदाय फिर से टकरा जाते हैं। गांधी ''यद्यपि आपके विचार और अभ्यास और मेरे बीच सतही रूप से समानता है, मुझे यह मानना होगा कि आपका विचार मेर (एम.के.गांधी, 17 फरवरी, 1946) विचार से कहीं बेहतर है।''

धर्म का अर्थ है आत्म–साक्षात्कार या स्वयं का वास्तविक स्वरूप (प्यारेलाल, 1965)[6] गांधी मनुष्य के अंतिम लक्ष्य को ईश्वर की प्राप्ति मानते हैं। उसकी सभी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों को ईश्वर के परम दर्शन द्वारा निर्देशित किया जाना है। सभी मनुष्यों की तत्काल सेवा आवश्यक हो जाती है क्योंकि ईश्वर को खोजने का एकमात्र तरीका उन्हें अपनी रचना में देखना और उसके साथ एक होना है। यह सब की सेवा से ही संभव है। वह संपूर्ण का अभिन्न अंग था और वह उसे मानवता की जड़ से अलग नहीं कर सकता। उनका मानना है कि, ''मेरे देशवासी मेरे निकटतम पड़ोसी हैं।[7] वे इतने असहाय हो गए हैं, इतने निष्क्रिय हैं कि मुझे उनकी सेवा करने पर ध्यान देना चाहिए। गांधी ने घोषणा की कि, अगर मैं खुद को मना सकता हूं कि मुझे उन्हें हिमालय की गुफा में ढूंढना चाहिए, तो मैं तुरंत वहां जाऊंगा। लेकिन मुझे पता है कि मैं उन्हें मानवता से अलग नहीं पा सकता[8] (एम.के. गांधी, 1936। पृष्ठ 226)।

धर्म 'वाद' नहीं है, यह केवल बौद्धिक ज्ञान या सिद्धांतों के किसी भी सेट में विश्वास नहीं है बल्कि आत्मा का एक जन्मजात गुण है।[9] धर्म हमें एक इंसान के रूप में जीवन में अपने कर्तव्यों को परिभाषित करने में सक्षम बनाता है और हमें साथियों के बिना सही ढंग से व्यवहार करने में सक्षम बनाता है। हमें अपने बारे में जानना होगा।[10]

निष्कर्ष गांधी को बहुत प्रभावित किया। बुद्ध कहते हैं, विजय घृणा को जन्म देती है, क्योंकि विजित दुखी होता है (ए.के.कुमार स्वामी और आई.बी. हॉर्नर 2003। पृष्ठ–122)। जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ही अंहिसा, ब्रहमचर्य, अपरिग्रह अस्तेय पर अधिक बल देते हैं। गांधी के विचारों और विचारवारा को प्रभांवित करने वाली पुस्तकों में गीता को प्रथम स्थान दिया जा सकता है। यह आचरण का एक अचूक मार्गदर्शक और दैनिक संदर्भ का एक शब्दकोश बन गया है। (एम.के.गांधी, 2011। पृष्ठ– 244)।

गीता की शिक्षाओं ने उन पर गहरी छाप छोड़ी है। गांधी जी के लिए मानवता के अब तक के सबसे महान शिक्षकों में से एक थे, यीशु उनका मानना था कि यीशु केवल ईसाई धर्म से नहीं, बल्कि पूरी दुनिया

और सभी जातियों और लोगों से संबंधित है। (द मॉडर्न रिव्यू, 1941। पृष्ठ 407)। गांधी स्वामी विवेकानंद के जीवन और शिक्षाओं से बहुत प्रभावित थे। दरिद्रनारायण, गरीबों के भगवान की उनकी अवधारणा को गांधी द्वारा विस्तृत और अभ्यास किया गया था। इसके अलावा रस्किन, टॉल्स्टॉय, रोमेन रोलैंड और कई अन्य लोगों ने उनके जीवन को गहराई से प्रभावित किया था। रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' और उनकी अवधारणा कि अच्छा व्यक्ति सभी की भलाई में निहित है, से बहुत प्रेरणा मिली।'' सर्वोदय और अंत्योदय की अवधारणाए इसी प्रभाव की उपज थीं।

मानवतावाद में गांधी के अपार योगदान में एक ऐसे धर्म की कल्पना करना शामिल है जो लगभग पूरी तरह से मनुष्य और उसके जीवन के आसपास इस दुनिया में केंद्रित है। उनके अनुसार, धर्म को हमारी सभी गतिविधियों में व्याप्त होना चाहिए, यह किसी के साथी प्राणियों से एकांत में और जीवन की अन्य गतिविधियों से अलग होकर पीछा नहीं किया जा सकता है और न ही किया जाना चाहिए। धर्म के समकक्ष संस्कृत में 'धर्म' हैं जिसका अर्थ है नैतिक दायित्व और व्यक्ति की अखंडता के साथ–साथ सामाजिक सद्भाव को भी दर्शाता है। गांधी ने धर्म को इस दृष्टि से पूरी तरह से समझा।

उनका मानवतावाद अभिन्न है, मानव जीवन के सभी पहलुओं पर चर्चा करता है और इसमें तर्कवादी दृष्टिकोण हैं जो रोमांटिक मानवतावाद के साथ–साथ कट्टरपंथी मानवतावाद से भिन्न हैं और फिर भी दोनों को संश्लेषित करते हैं।

गांधी के अनुसार, एक हिंदू वह है जो भारत में एक हिंदू परिवार में पैदा हुआ, वेदों, उपनिषदों और पुराणो को पवित्र पुस्तकों के रूप में स्वीकार करता है; जो सत्य, अहिंसा आदि के पांच यमो [नियमों] में विश्वास रखता है और अपनी क्षमता के अनुसार उनका अभ्यास करता है; जो आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास करता है और यह भी मानता है कि आत्मा न कभी पैदा होता है और न ही कभी मरता है, लेकिन शरीर में अवतार के माध्यम से अस्तित्व से अस्तित्व में चला जाता है और मोक्ष प्राप्त करने में सक्षम होता है; जो मानते हैं कि मोक्ष मानव प्रयास का सर्वोच्च अंत है और वर्णाश्रम और गोरक्षा में विश्वास करता है। मुझे अपने आप को एक कट्टर सनातन हिंदू घोषित करते हुए खुशी हो रही है (एम.के.गांधी, 16 जनवरी 1921)।

विश्व के विभिन्न धर्मों के बीच सद्भाव की सच्ची भावना एक न्यायपूर्ण और मानवीय समाज का निर्माण करना हैं एक मानवतावादी के रूप में गांधी ने हमें कथित धर्मनिरपेक्षता की चिड़चिड़ी समस्या का स्थायी समाधान प्रदान किया है। उन्होंने न्यायपूर्ण और मानवीय समाज की स्थापना के लिए प्रस्ताव रखा और काम किया। मानवतावाद का धर्म–विरोधी स्वभाव नहीं था। मानवतावादी की धार्मिक चर्चाओं के दो प्रमुख विषय थे, धर्म का सार्वजनिक कार्य उनके विचार में यदि आदर्श सत्य है तो उस सत्य की ओर जीवन का अनुसरण करना चाहिए। यहाँ जीवन की सार्थकता और उसकी सुंदरता निहित है। यदि ऐसा न होता और जीवन की धारा का झुकाव आदर्श की और नहीं हो पाता, तो गांधी की दृष्टि में आदर्श मूल्यहीन है। इसलिए गांधी आदर्श और व्यवहार, साधन और साध्य में कोई भेद नहीं करते हैं। वह उस आदर्श को झूठा मानता है, और ऐसा ही जीवन है, जिसकी ओर जीवन आगे नहीं बढ़ सकता। इसी दृष्टिकोण से गांधी जी ने सत्य और अहिंसा को आदर्श मानकर व्यवहारिक रूप प्रदान किया।

सन्दर्भ :

1. वर्मा, वी.पी.(1979), फिलॉसॉफिकल हयूमनिज्म एंड कंटेम्परेरी इंडिया, मोतीलाल बनारसीदास इंडोलॉजिकल पब्लिशर्स एंड बुकसेलर्स, दिल्ली, पीपी, 2–14।
2. कुमार स्वामी, ए.के.और हॉर्नर, आई.बी. (2003),गौतम बुद्ध, रूपा कंपनी।
3. दत्ता, डी.एम. (1953), द फिलॉसफी ऑफ महात्मा गांधी, यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस, मैडिसन, पी–9–13।
4. गांधी, एम.के.(2011), सत्य के साथ मेरे प्रयोगों की कहानी, महादेव देसाई द्वारा गुजराती से अनुवादित, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृ. 3–297।

5. हरिजन, 29 अगस्त 1936 पृ. 226
6. कमलापति त्रिपाठी (1993), गांधी और मानवता, अटलांटिक प्रकाशक और वितरक, नई दिल्ली – 248 पृष्ठ
7. एम.के.गांधी, ''हिंदू स्वराज या भारतीय होम रूल'', 16 जनवरी 1921, महात्मा गांधी के एकत्रित कार्यो में (1966) प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, वॉल्यूम। XIX, पीपी 327–340।
8. एम.के.गांधी, ''शिक्षकों के लिए भाषण'', सेवाग्राम, 17 फरवरी 1946, महात्मा गांधी के एकत्रित कार्यो में (1970), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, वॉल्यूम। LXXXIII, पीपी. 390–440।
9. प्यारेलाल, एन (1965), महात्मा गांधीः द अर्ली फेज, वॉल्यूम। आई, नवजीवन पब्लिशिग हाउस, अहमदाबाद
10. छ मॉडर्न रिव्यू, अक्टूबर 1941, पी 407